Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

जुलायी १९७३

श्रावण संवत् २०३०

मूल्य १ रुपया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रावण—२०३०

अंक में पढ़िये

जुलायी १९७३

१. संपादकीय— ७
२. मैं हृदय मंदिर से लिख रहा हूँ—भारतेन्द्रनाथ ९
३. वेद गंगा—काव्यानुवाद १७
४. वेदोपदेश—आचार्य पं० प्रियव्रत जी २४
५. आप ही के पत्र— २५
६. आप क्या बनना चाहते हैं ?—हरिशरण सिद्धांतालंकार ३३
७. आत्म विद्या—विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड ३६
८. महर्षि जीवन की अप्रकाशित घटनाएं—आचार्य रामदेव जी ४१
९. क्या मांस मनुष्य का आहार है ? ४७
१०. सुख का मार्ग—महात्मा प्रभु आश्रित जी ४९
११. शिशु—संसार—कहानियां ५४
१२. दो पत्र ६९
१३. क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ?—आचार्य शिवपूजन सिंह एम० ए० ७१

मुख पृष्ठ का चित्र

आरा के ८० वर्षीय वृद्ध युवा शहीद कुंवर सिंह : जो १८५७ में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध में शहीद हुए

३१ अगस्त के बाद

वेद भाष्य-४ जिल्दों में

मूल्य १०१ रुपया होगा

३१ अगस्त से पहले ८०) में वेद भाष्य के सदस्य बनाएं

घर-घर में वेद पहुँचाएं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंजीकृत ट्रस्ट

[द]यानन्द संस्थान
[न]ई दिल्ली का प्रकाशन

जन - ज्ञान
(मासिक)

सम्पादक
—राकेश रानी

[दू]रभाष: ५६६६३९

पता—
[१]९७ हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाईवाला
[क]रौल बाग, नई दिल्ली-५

[व]ार्षिक मूल्य १२)
विदेश में—एक पौंड
[आज]ीवन—२०१)

वर्ष ६ : अंक ३
श्रावण-संवत् २०३०
जुलायी—१९७३

तुम हो कौन, रे भाई !

समझ लेना कहां हो तुम,
समझ लेना कहाँ हूँ मैं ?
सिसकती जिन्दगी का दम,
कहां पर टूटता देखा ?

किसी ने कब, कहो समझा,
कहाँ मंजिल, कहाँ है घर,
हमारी दौड़ कितनी है,
हमारा प्यार किससे है ?

नहीं समझे, नहीं जाना,
जो सच है वह नहीं माना,
उलझते बढ़ रहे हैं हम,
उजड़ते चल रहे हैं हम।

बहुत कुछ हैं, हमें अभिमान
धन का है, पदों का है।
जमीं का, राज्य के बल का
हमारा बल बहुत कुछ है।

मगर जब चल पड़ेंगे हम,
सभी कुछ रूठ जाएगा।
सजाया स्वप्न जो सुन्दर,
चटक कर टूट जाएगा।

न कुछ भी साथ जाएगा,
न कुछ भी काम आएगा,
भटकना जिन्दगी भर का,
समझ में स्वयं आएगा।

मगर तब क्या करोगे प्रिय !
सच्चाई देखलो भाई !
अरे यह जान लो भाई !
कि तुम हो कौन, रे भाई ?

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रत्येक माता-पिता

विवाह के पावन अवसर पर

वेद

वर-वधु को

उपहार में अवश्य दें

परमात्मा की अमृत वाणी

५००० मंत्रों का ऋषि दयानन्द

कृत ऋग्वेद के ६ मंडलों का भाष्य

आकर्षक सुनहरी जिल्द में

मूल्य केवल ३१) ; आर्ट पेपर मूल्य ५१)

चारों वेदों के भाष्य के लिए

८०) तुरन्त भेजिए

और प्रथम खण्ड साथ ही लीजिए

दूसरा और तीसरा खण्ड भी शीघ्र ही मिलेगा-छप रहा है

व्यवस्थापक

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

३१ अगस्त से वेद भाष्य का मूल्य १०१)

होने वाला है। शीघ्रता करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शाबास जोधपुर !

जोधपुर के आर्य बन्धुओं ने दयानन्द के सच्चे शिष्य होने का जीवित प्रमाण उपस्थित कर जो आदर्श प्रस्तुत किया है, उस के लिए उनका जितना भी अभिनन्दन किया जाए, वह थोड़ा है। सारे भारत में केवल इस नगर के आर्य वीरों ने प्रचार का वह ढंग अपनाया है, जिसे यदि देश के सब आर्य समाज और आर्य नेता अपना लें तो सचमुच आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह सफल हो सकता है।

पिछले कुछ मास में जोधपुर के घर-घर में सत्यार्थप्रकाश और ऋषि जीवन पहुंचाने के अभियान के लिए नगर के प्रतिष्ठित आर्यजन घरों से निकले, गली-गली और चौराहे-चौराहे पर खड़े होकर इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश बेचे। २)२५ के मंगाए और २) में दिए–जिसका परिणाम है कि केवल मई व जून १९७३ में यह हजारों सत्यार्थप्रकाश और ऋषि जीवन का प्रकाश फैला चुके हैं।

जोधपुर के आर्य हमारे आदर और श्रद्धा के पात्र हैं। उन्होंने अपने कार्यों से आर्यसमाज को नया मार्ग दिखाया है। उनके आदर्श का अनुसरण यदि देश का प्रत्येक आर्यसमाज करे तो सर्वत्र "ऋषि दयानन्द की जय" के स्वर गूंज सकते हैं।

धर्म की सच्ची गंगा जोधपुर में बहाने के लिए वहां के आर्य वीरों को बधायी ! स्वागत......

प्रभु इन का धर्मबल बढ़ाता रहे ! धर्म प्रचार के लिए उत्साह दिन दूना हो ! संपूर्ण कार्य आर्यसमाज गुलाब सागर जोधपुर के तत्वावधान में हो रहा है। ऐसे सच्चे ऋषि भक्तों के प्रति हमारा मस्तक नत है।

शुभ कामनाओं सहित

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-भाष्य-प्रकाशन-यज्ञ की सफलता के लिए

प्रत्येक वेद भक्त कम से कम २५) की आहुति भेजे

जो एक साथ न भेज सकें वे २ रुपये
मासिक एक वर्ष तक भेजें

प्रति माह व्रत रख कर भी आहुति भेजिए
ताकि परमात्मा की अमर वाणी
भूमण्डल के प्रत्येक परिवार में
पहुंचाने का कार्य
बढ़ता रहे-फैलता रहे
आप का सहयोग मिलेगा ही इस
विश्वास से हम बढ़ रहे हैं

—राकेश रानी

क्या 'वेद' प्रचार के लिए आप इतना
भी न कर सकेंगे ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज का सच्चा नेता

जो ध पु र

गुलाबसागर जोधपुर आर्यसमाज के अधिकारी श्री रामसिंह, श्री रामस्वरूप और श्री रामचन्द्र जी "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रकाश फलाते हुए

●●●

जोधपुर उस क्रांति का प्रतीक बन गया है जिस क्रान्ति की अग्नि ऋषि दयानन्द प्रज्वलित करना चाहते थे। जोधपुर ने आर्यसमाज को नई दिशा दी है, नया दर्शन और कार्य की नयी पद्धति दी है।

भारत के हजारों आर्यसमाजों में अकेला जोधपुर है जिसने हमारी आत्मा की पुकार को सुना है, जिसने प्राण-शक्ति और साहस से युग को झकझोर सत्य अर्थ का प्रकाश फैलाने के लिए पग उठाया है।

प्रदर्शन और नारेबाजी की दौड़ में रचनात्मक कार्यों में पहल कर जोधपुर के आर्य बन्धुओं ने जिस मार्ग को प्रशस्त किया है उस पर यदि देश का प्रत्येक आर्यसमाज चल पड़े तो..............ऋषि दयानन्द के दिव्य स्वप्न साकार हो सकते हैं।

काश कि देश का प्रत्येक आर्य जोधपुर की ज्योति से प्रेरणा ले सकता ?

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द संस्थान द्वारा प्रकाशित

अंग्रेजी-साहित्य

Vedic English Literature

1. **Light of truth.** अंग्रेजी भाषा में (दूसरा संस्करण) (कपड़े की जिल्द में) अब मिल रहा है — मूल्य १२)
2. **A short life story of Swami Dayananda Saraswati.** मूल्य १)
3. **Man and his Religion.** स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती लिखित वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए महान् रचना मूल्य १)
4. **What is yoga ?** योग क्या है ? इस संबन्ध में सही जानकारी देने वाली पुस्तिका मूल्य २० पैसे — १५) सैंकड़ा
5. **Teachings of Swami Dayananda.** — मूल्य १)
6. **The vedic fundamentals.—Shri R. D. Sharma** — मूल्य २.५०
7. **Ten commandments.** स्व० पं० चमूपति जी द्वारा लिखित आर्यसमाज के १० नियमों की प्रभावपूर्ण व्याख्या मूल्य १.००
8. **The Ten principles of the Arya Samaj.** १५) सैकडा
9. **The Great Gaytri.** २० पैसे — १५) सैकड़ा
10. **Vedic-prayer.** संध्या-हवन-स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण आदि की अंग्रेजी-हिन्दी में विस्तृत व्याख्या — मूल्य २.५०
11. **Life and teachings of Swami Dayananda.** मूल्य १०-००
12. **Vedic life.** वेद के अनुसार जीवन कैसे विताएं ? वेद मंत्रों द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी में प्रेरक मार्ग दर्शन मूल्य २.५०
13. **Message of the Arya Samaj to the universe.** मूल्य ५० पैसे
14. **Dayananda the Great.** १५ पैसे — १०) सैकड़ा
15. **Christianity and Vedas.** पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड द्वारा लिखित खोजपूर्ण ग्रन्थ—मूल्य १.५०
16. **Bible in the balance.** .15 पैसे
17. **A challenge to the christian faith.** .50 पैसे
18. **An introduction to the Arya Samaj.** .15 पैसे
19. **The Essence of Vedic Religion.** .15 पैसे

अंग्रेजी जन-ज्ञान के अधिक से अधिक सदस्य बना सहयोग दें

जन - ज्ञान - प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहीं आप में भी तो अभारतीयता नहीं आगई ?

ब्रिटिश शासन से हमारा मुख्य संघर्ष यह था कि वह भारत की भारतीयता समाप्त करने पर तुला था। स्वतन्त्रता का संग्राम धर्म-संस्कृति और सम्मान की सुरक्षा के लिए लड़ा गया था। हमने सोचा था, कि विदेशी शासक के विदा होते ही विदेशी सभ्यता भी यहां से विदा हो जायेगी।

किन्तु हुआ सर्वथा उलटा, अंग्रेज गए पर अंग्रेजियत पैर फैलाकर देश पर अधिकार कर बैठी। पिछले २०० साल की गुलामी में हमने जो नहीं खोया था वह २० वर्ष की स्वतन्त्रता में लुटा दिया। कोई निष्पक्ष भाव से विचार कर बताए तो सही आज हमारे पास गौरव करने योग्य क्या शेष बचा है ?

सभी राजनैतिक दल लगभग-एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सेवा को छोड़ मेवा प्राप्ति का मार्ग सभी का आराध्य है। चुनाव की राजनीति ने राष्ट्र की भित्ति को खोखला कर दिया है। चरित्र, एकता, आदर्श, सादगी और राष्ट्रीयता राष्ट्र में आज कहाँ है ? मोहक नारों ने शोषक बन कर भारत कोगारत करने में कोई कोई कसर नहीं छोड़ीहै ?

गौएं आज भी कटती हैं, नारी आज भी बिकती है। धर्म और ईमान की होली जला कर धर्म के गीत आज भी गाए जाते हैं। सत्य के पुजारी देश में सत्य की खोज आज उतनी ही कठिन है जितनी रेगिस्तान में पानी की।

हमारा प्यारा देश जल रहा है, कभी भूख-अकाल में, कभी दंगों में, कभी चुनाव में, कभी युद्ध में। युवा पीढ़ी उन्मुक्त हो चुकी है। उनका आत्म विश्वास मिट चुका है और आदर्श कहीं दीखता नहीं। आखिर कौन है सारे देश में ऐसा, जिसे सभी की श्रद्धा प्राप्त हो ?

कौन करेगा सुधार, और कौन सुने गुहार, चारों ओर अंधेरा है और आशा की किरण जहां है वहां भी सुस्ती-काहिली और स्वार्थ घुस चुके हैं। फिर भी अभी कुछ नहीं बिगड़ा।

आवश्यकता है देश को वशिष्ठ ऋषि की, चाणक्य की, दयानन्द की। कहां हैं इनके अनुयायी, जो स्वयं जल सकें, इसलिए कि भारत भारत रह सके। भारत के गौरव और उसकी महान् धरती पर आज संकट घिर आया है। असुरों की सेनाएं चारों दिशाओं से हमारे प्रिय देश को समूल नष्ट करने उमड़ आयी हैं। हम इन आसुरी भावों के विनाश के लिए फिर से राम का धनुष-बाण और कृष्ण का सुदर्शन चक्र उठाने का भाव प्रत्येक आर्य पुत्र के हृदय में उत्पन्न करना चाहते हैं। पर कौन है आर्य पुत्र ? माताओ ! अपने बेटों को राम बनने की प्रेरणा करो। बहनो ! अपनी सन्तानों को कृष्णनीति पर चलने की शिक्षा दो। शिवा-प्रताप का शौर्य अपने भाइयों के हृदयों में भरो। बढ़ता हुआ अधर्म-धर्म को मिटा देगा तो फिर क्या बचेगा ? सोचो और खड़े होकर कुछ ऐसा करो कि तुम भारत के सच्चे बेटे कहला सको। अपने को देखो और स्वयं निर्णय करो कि कहीं तुम में भी तो अभारतीयता नहीं आ गयी ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद भाष्य के सम्बन्ध में !

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के भाष्य की अब तक २००० प्रतियां वितरित की जा चुकी हैं। ग्रन्थ को देखने के बाद कोई भी व्यक्ति एक जिल्द की प्रतीक्षा के लिए और उतने बड़े ग्रन्थ को संभालने के लिए तैयार नहीं।

बहुत से आर्य बन्धुओं का आग्रह यह भी है कि ऋषि के मंतव्यानुसार वेद चार हैं, अतः चार जिल्दों में ही वेद भाष्य भी होना ही चाहिए।

अतः सभी सम्बन्धित व्यक्तियों से हमारा आग्रह है कि वे वेदभाष्य ४ जिल्दों में ही मंगाएं। जिल्द व्यय देकर भी सदस्यों को लागत से आधे मूल्य में ग्रन्थ पड़ रहा है। कागज के दाम ड्योढ़े हो चुके हैं। फिर भी हम जैसे भी संभव होगा भाष्य पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमें प्रभु का विश्वास है, वे अपनी वाणी के प्रचार का कार्य स्वयं पूरा करेंगे।

आप भी वेद के प्रति श्रद्धा का परिचय दे आज ही प्रथम खण्ड मंगाने का निश्चय कीजिए। बिना प्रथम खण्ड देखे आप यह अनुमान ही नहीं कर सकते कि यह प्रथम खन्ड कितना सुन्दर व आकर्षक है।

६ रुपये जिल्द व्यय, जिल्द को देखते हुए अत्यन्त साधारण लगेगा। डाक पैकिंग आदि व्यय तो देने ही हैं। यजुर्वेद भाष्य—सामवेद भाष्य श्रावणी तक मिल जाए, ऐसा यत्न हम कर रहे हैं। फिर भी दीवाली से पहले अगले दोनों वेदों का सुन्दरतम भाष्य आपके हाथों में होगा।

यजुर्वेद का संपूर्ण ऋषि दयानन्द कृत भाष्य हम ८ रुपये में देने की घोषणा कर चुके हैं। इसे भी जो मंगाना चाहें मंगा सकते हैं। मूल्य ८ रुपये प्रति अब भी दिया जाएगा।

—राकेशरानी

दयानन्द संस्थान का कार्य भार संभालिए

संस्थान का कार्य एक-डेढ़ वर्ष में ही इस तेजी से बढ़ा है कि हम उसे संभालने में कठिनायी अनुभव कर रहे हैं। हमारी इच्छा है कि कुछ योग्य व्यक्ति आगे आकर हमारा भार बांटें और संभालें। हमें ऐसे योग्य व्यक्ति की भी आवश्यकता है जो हमारे पश्चात् इस सारे कार्य भार को संभाल ही न सके, अपितु आगे बढ़ा सके और हमारे स्वप्नों की पूर्ति भी कर सके।

योग्य साथियों का और उत्तराधिकारी व्यक्तियों का मिलना बहुत कठिन है फिर भी हम चाहते हैं ऋषि दयानन्द के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए जीवन की आहुति देकर कुछ व्यक्ति कार्य भार संभालें, बढ़ाएं।

पदों की होड़ में दौड़ने वाले व्यक्ति तो अनगिन हैं पर जीवन गला कर देव दयानन्द की फुलवारी सरसाने वाले व्यक्तियों को हमारी आंखें खोज रही हैं… पता नहीं जीवन में कोई इच्छित व्यक्ति मिलेगा या नहीं ?

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ ~ भारतेन्द्र नाथ

हाँ..........या..........नहीं ?

किसी भी बात का दो टूक उत्तर देना मनुष्य की निर्णायक शक्ति का प्रतीक है। बात को टालते रहना अपने को भी धोखा देना है और दूसरों को भी। हम जीवन का उपभोग करते हैं शरीर के लिए, शरीर ही हमारा लक्ष्य और वही हमारा साध्य है। शरीर के अतिरिक्त और कुछ भी है। इसका हमें ज्ञान नहीं, हो भी नहीं सकता क्योंकि हमारे संस्कार और शिक्षा ने हमें जो कुछ भी सिखाया है वह दर्शन देह का है। इस राह पर चलते हुए हमें न आनन्द मिलता है न शान्ति। भटकन हमारे अंग संग जम गई है।

दिन बीत रहे हैं, जीवन की अवधि कम होती जा रही है। कौन जानता है कब इस देह के भस्मीभूत होने का क्षण आ जाए। पर हमें उसकी तो चिन्ता रहती है—जो जल जाएगा पर उसका कभी ध्यान नहीं आता जो सदा रहता है और जिसके न रहने पर देह 'शव' बन जाता है।

प्रश्न गहरा है पर सीधा भी—आप सत्य से प्यार करते हैं या असत्य से ? टालिए नहीं—निर्णायक उत्तर दीजिए ! आपको सुख-आनन्द—शान्ति चाहिए या दुःख-कष्ट और चिन्ता ? स्पष्ट उत्तर दीजिए और तुरन्त निर्णय कीजिए कि आप अपने को उठाना चाहते हैं या मिटाना ?

जो कुछ आप कर रहे हैं वह शरीर के लिए है, आपके लिए नहीं। हमारा आग्रह है कि आप अपनी देह का उपयोग अपने लिए करें। देह-देह के लिए नहीं आत्मा के लिए है। और जिस देह पर आत्मा का शासन नहीं होता वह देह प्राण शक्ति शून्य रहती है।

"ज्ञान" आत्मा के लिए है। "बुद्धि" आत्मा को देह पर नियन्त्रण की साधना कराती है। और शक्ति ज्ञान-बुद्धि आत्मा को देह के प्रयोग द्वारा उस धन के संग्रह की प्रेरणा करती हैं जिस धन द्वारा मनुष्य धनवान बन कर अपने चरम लक्ष्य आनंद और पिता परमात्मा की अमृतगोद में स्थान प्राप्त करता है।

धर्म नाम है ज्ञान के धारण का और ज्ञान नाम है उस तत्व का जो मुझे अर्थात् आत्मा को ऊपर उठाए। नीचे गिरना मृत्यु और उठना अमरता की ओर प्रयाण है। आंखें मन की खुलें, आत्म दर्शन कर हम जीवन के सत्य को समझें तो स्वर्ग हमारे घर आंगन में साकार थिरकता है।

बोलो मेरे भाई ! हां''' या '''''नहीं ? रास्ता बदल कर चढ़ोगे या नरक में गिरोगे ? एक-एक पल मूल्यवान है....भटको नहीं, तुरन्त निर्णय कर जो कुछ करना है कर डालो...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शताब्दी और महासम्मेलन

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी जैसे-जैसे समीप आती जा रही है वैसे-वैसे शताब्दी के उपलक्ष्य में धूमधाम के सम्मेलन करने के आयोजनों की होड़ लग रही है। गत वर्ष अलवर में, इस वर्ष मेरठ में, अगस्त में मारीशस में और मार्च में कानपुर में महासम्मेलनों की घोषणाएं हो चुकी हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीर्षस्थ नेताओं की दृष्टि में महासम्मेलनों की सफलता ही शताब्दी की सफलता है।

हम यह भूल चुके हैं कि भारत के ५५ करोड़ वासियों में कम से कम ५२ करोड़ व्यक्ति अभी तक भी आर्यसमाज की विचारधारा से अपरिचित हैं। लाखों ग्रामों और नगरों में आर्यसमाज नहीं हैं। जहां हैं भी वहां कहीं ताले बन्द हैं और कहीं निराशा का साम्राज्य। शायद कुछ सौ आर्यसमाजें ही ऐसी होंगी जिन्हें जीवित कहा जा सके।

निराशा के भंवर में गोते खाता हमारा जहाज डोल रहा है। आत्महीनता की स्थिति ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा, श्रद्धा का अभाव, उत्साह की कमी और उमंग शून्यता ने हमारी गति अवरुद्ध कर रखी है, किन्तु हमारे कर्णधार आज भी इन सब आधारभूत बातों की उपेक्षा कर अखबारी प्रशंसा प्राप्त करने के अतिरिक्त और कुछ भी करने के लिये तैयार प्रतीत नहीं होते।

उपदेशक, संन्यासी, विद्वान् और कर्मठ कार्यकर्त्ता यदि एकत्र होकर कुछ कर डालने का निश्चय करते तो शताब्दी के अवसर पर आर्यसमाज संगठन में नई प्राण शक्ति संचारित की जा सकती थी। सभाओं के अधिकारी अगले २ वर्ष के लिए सारे चुनाव कार्यक्रम स्थगित कर यदि दिनरात शताब्दी आयोजन कर ग्राम-ग्राम और गली-गली तक संदेश पहुंचाने का संकल्प लेते तो देश को बदला जा सकता था।

हमारा मन मारीशस, कानपुर या कहीं और के सम्मेलनों की धूमधाम को आर्यसमाज स्थापना शताब्दी कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य मानने को तैयार नहीं। हम तो चाहते हैं कि सार्वदेशिक सभा के नेतृत्व में देश की प्रतिनिधि सभाओं व आर्यसमाजों के प्रधानमंत्रियों का एक सम्मेलन तुरन्त बुलाया जाए जो निश्चय करे कि—

१—आगामी २ वर्षों तक प्रतिनिधि सभाओं व सार्वदेशिक सभा के सारे अधिकारी अपने निजी सारे काम छोड़कर सारा समय केवल शताब्दी कार्यक्रमों के के लिए दें।

२—पुरानी आर्यसमाजों को जागृत करने और नयी आर्यसमाजें अधिक से अधिक स्थापित करने का यत्न किया जाए।

३—यत्न किया जाए कि भारत के प्रत्येक ग्राम तक आर्यसमाज का सन्देश पहुँचाया जाए।

४—देश की दीवारें आर्यसमाज के मंतव्य प्रगट करने वाले पोस्टरों से भर दी जाएं।

५—करोड़ों की संख्या में प्रचार पुस्तकें प्रान्तीय भाषाओं व हिन्दी-अंग्रेजी में छपाई जाएं।

६—सत्यार्थप्रकाश कम से कम ५० लाख निकाला जाए।

७—महर्षि का जीवन चरित्र एक करोड़ प्रकाशित हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

८—'वेद' के चुने मन्त्र और वेद की विशेषता पर एक ग्रन्थ सभी प्रमुख भाषाओं में कम से कम १० लाख छापा जाए।

९—वेदभाष्य कम से कम १ लाख प्रसारित हो।

१०—भारत के सभी समाचार पत्रों में वैदिक विचारधारा सम्बन्धी लेख निकलवाए जाएं।

यह १० सुझाव अगर सार्वदेशिक सभा चाहे तो अमल में आ सकते हैं किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सारे भेद, सारे झगड़े, सारे स्वार्थ हम दो वर्ष के लिए जला दें। अपने राजनैतिक व्यक्तिगत हितों को छोड़कर सभी शीर्षस्थ व्यक्ति इन कामों में लगें। आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज के सभी नेता अगले २ वर्षों के लिए लेखराम, श्रद्धानन्द की तरह आर्यसमाज के दीवाने बन जायें।

पाप का कूड़ा, अज्ञान का करकट और पाखण्डों का पिटारा चारों ओर फैल चुका है, इसे जलाने के लिए आग चाहिए, सच की आग, त्याग और बलिदान की आग, वह आग जो शहीद बनने की प्रेरणा करती है।

आर्यनेताओ ! लकीर मत पीटो, १९७५ आ रहा है, अग्नि प्रज्वलित करो। ऐसी अग्नि जिसमें देश का सारा अज्ञान जल जाए। क्रान्ति की उस मशाल को जोरों से जलाओ, जिसे देव दयानन्द ने प्राण देकर ज्योतित किया था।

आर्यसमाज की महत्ता की छाप धरती के प्रत्येक मानव मन पर अंकित करने का प्रयत्न करो। आर्यसमाज क्या है ? यह भारत के प्रत्येक व्यक्ति को बताने का यत्न करो। भाषणों और महासम्मेलनों को ही लक्ष्य मत बनाओ। कुछ ऐसा करो कि "ऋषि दयानन्द की जय" का स्वर धरती पर गूंजने लगें।

वेद प्रचार किसे कहते हैं ?

आर्यसमाज स्थापित हुआ था, वेद प्रचार के लिए। आर्यसमाज के संस्थापक दयानन्द ने जीवन लगाया था वेद प्रचार के लिए। आर्यसमाज का तीसरा नियम है "वेद का पढ़ना-पढ़ाना—सुनना-सुनाना आर्यों का **परम धर्म** है।" पर वेद-प्रचार क्या होता है ? कैसे होता है, यह हमें आज तक नहीं मालूम ?

पिछले सौ वर्षों में वेद प्रचार के नाम पर कम से कम २ करोड़ रुपया व्यय हुआ होगा, पर इन २ करोड़ में से आधा रुपया भी यदि सचमुच वेद-प्रचार में लगता तो आज देश का नक्शा **कुछ और** ही होता।

और आज भी आर्यसमाज का संगठन, जिसकी स्थापना वेद प्रचार के लिए हुई थी, सब कुछ करता है सिवाय वेद-प्रचार के..........सच तो यह है कि आर्यसमाजों के अधिकारियों ने आज तक यह सीखा ही नहीं कि वेद-प्रचार किसे कहते हैं ?

पार्टी के आधार पर पवित्र आर्यसमाज मंदिरों पर कब्जा कर बैठे हुए **प्रधान और मंत्री** सिवाय लकीर **पीटने के और** कुछ करने के लिए आज तैयार नहीं, उनकी दृष्टि में प्रमाणित ऋषि दयानन्द नहीं अपितु वे स्वयं सर्वोपरि हैं। जो वे चाहते हैं वह करते हैं। जो उनकी प्रशंसा करे उसी के गीत गाते हैं। हमारी दृष्टि में आर्यसमाजों के प्रधान और मंत्रियों का रवैया महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन पंक्तियों को पढ़कर आप रुष्ट हो सकते हैं, पर इससे समस्या का हल तो नहीं होगा, हमारा आपसे, आर्यसमाज के प्रत्येक अधिकारी से प्रश्न है कि उन्होंने अपने कार्यकाल में—

१—कितने घरों में वेद पहुंचाए ?

२—कितने सत्यार्थप्रकाश वितरित किए ?

३—कितनों को 'वेद' के दर्शन कराए ? यदि नहीं तो बताओ मेरे भाई ! आपने क्या किया ?

छोटे-छोटे सामयिक आन्दोलनों के लिए आपका जोश खूब उभरता है ? २—३ दिन के प्रदर्शनों के लिए लाखों रुपये फूंककर आप फूले नहीं समाते, किन्तु क्या यही आर्यसमाज का काम है ?

हमारी दृष्टि में आर्यसमाज का काम है वेद का प्रचार और वेद के प्रचार का सबसे पहला चरण है—ऋग् - यजु०- साम० - अथर्व० इन चारों वेदों को—इनके भाष्यों को घर-घर पहुंचाना । और जो आर्यसमाज का अधिकारी यह काम नहीं करता, जिस आर्यसमाज के भवन से, संगठन से यह काम नहीं होता वह और कुछ भी हो ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज नहीं हो सकता ।

पिछले १०० वर्षों में हमने यह आरंभिक काम भी नहीं किया और अगले २२ मासों में भी हम यदि इसे नहीं करेंगे तो हे आर्यसमाज के नेताओ, हे कर्णधारो, अधिकारियो ! इतिहास आपको क्षमा नहीं करेगा ।

आपका स्वार्थ, आपकी फूट, आपकी पथ भ्रष्टता ने उस महान् ज्योति को धूमिल करने का अपराध किया है जिसे देव दयानन्द ने ज्योतित किया था । आपके हृदय में ऋषि दयानन्द के प्रति हम उस श्रद्धा का अभाव अनुभव कर रहे हैं जिससे प्रेरणा लेकर आप धरती को दयानन्द-मय बना सकते थे । आप सो रहे हैं और शताब्दी आ रही है । आप आपस में उलझ रहे हैं और पाखंड बढ़ रहे हैं, आप भटक रहे हैं और अज्ञान नगाड़े बजा रहा है ।

कायर और कृतघ्न बनकर "आर्य" शब्द को कलंकित मत करो । मेरे भाई ! जागो और समझो कि वेद-प्रचार किसे कहते हैं ?

झगड़े, फूट और लकीर पीटने की प्रवृत्ति १९७६ में फिर उठा लेना, पर अब कृपा कर २ वर्ष के लिए तो उन्हें छोड़कर ऋषि दयानन्द के सच्चे भक्त-वीर सैनिक बन जाओ !

सारे काम छोड़ दो और लग जाओ रचनात्मक कार्यों में । दिखावे के काम फिर कर लेना, अपनी बुद्धि का प्रयोग फिर कर लेना, अब १९७५ तक तो ऋषि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द के आदेशों का पालन करो।

आर्यसमाज मंदिरों की दीवारों से बाहर आकर प्रचार आरंभ करो। प्रचार के नए प्रभावशाली ढंग अपनाओ। बाजारों में, मोहल्लों और गलियों में फैल जाओ और ऋषि दयानन्द की जय गुंजाओ। आपके एक हाथ में सत्यार्थप्रकाश और दूसरे में 'वेद' होना चाहिए। घर-घर वेद और सत्यार्थप्रकाश पहुँचाने का अभियान आरंभ करो, फिर देखो, कैसे चारों ओर ऋषि दयानन्द की विजय का संगीत गूंजता है।

'वेद' पढ़ो और पढ़ाओ! सत्यार्थप्रकाश फैलाओ.........यही वेद प्रचार का पहला चरण है। पहले 'वेद' के दर्शन, फिर स्वाध्याय और फिर वेद पर व्याख्यान यह क्रम चलेगा तब 'वेद' प्रचार होगा। जब आर्यसमाज के सभी सदस्य और अधिकारी प्रतिदिन १ घंटा अपने नगर ग्राम में प्रचार के लिए देंगे, तब नया सूर्योदय होगा।

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह के अवसर पर दयानन्द के वीर सैनिको! अपना कर्तव्य पहचानो। अपनी गरिमा देखो! देखो! बाजी हारने न पाए।

कम्यूनिज्म, भौतिकवाद, ईसाईयत, इस्लाम और पाखंडों को चुनौती दो और विजय के लिए संघर्ष करो। 'वेद' के प्रकाश और सत्यार्थप्रकाश की छाया में पाप—अज्ञान नहीं रह सकेंगे—यह विश्वास लेकर आगे बढ़ने का हमारा निमंत्रण स्वीकार करो............।

दयानन्द-संसद् का आवाहन

जिस समय "दयानन्द-संसद्" के प्रथम अधिवेशन के आयोजन की चर्चा हुई, उस समय हमारे पुराने साथी और अभिन्न सहयोगी श्री प्रो० रत्नसिंह जी ने गाजियाबाद में अधिवेशन करने और पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। उन्हीं की प्रेरणा और श्रम का परिणाम था कि यह ऐतिहासिक अधिवेशन संपन्न हुआ।

अनेक भाइयों के पत्र हमें मिले हैं जिन्होंने यह जानना चाहा है कि 'दयानन्द संसद्' का गठन क्यों? और इसका क्या संदेश है?

वस्तुतः आज जो मनस्थिति आर्य बन्धुओं की बन गयी है उसकी छाया में उनका चिन्तन या तो निराशावादी हो गया है या प्रदर्शनकारी। कार्य क्या है? कैसे किया जाता है, या किया जा सकता है, यह सोचने का अवकाश तो शायद किसी को भी नहीं है।

आन्दोलन, नेतृत्व या पदों की भूख के इर्दगिर्द आर्यसमाज का तथाकथित नेतृवर्ग सोचता और चलता है। ऐसे में 'दयानन्द-संसद्' का कार्य केवल कार्य पर विचार, कार्यपद्धति पर विचार और कार्यक्रम पर विचार तक सीमित होगा। दयानन्द संसद्' प्रतिवर्ष संपन्न होगी और जहाँ तक संभव होगा सर्वसम्मति से यह निर्णय करेगी कि अगले वर्ष आर्यसमाज क्या करे? आर्यसमाज से हमारा तात्पर्य उस शक्ति से है जो ऋषि दयानन्द की लक्ष्य और भावना पूर्ति के लिए संगठित किया गया था।

जहाँ तक हमारा ज्ञान है इस समय आर्यसमाज के किसी भी संगठन के कर्णधारों के पास आर्यसमाज के कार्यक्रम पर विचार के लिए अवकाश नहीं है। जितने भी अधिवेशन होते हैं उनमें चुनाव के या पार्टीबाजी के अतिरिक्त और क्या होता है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसका हमें ज्ञान नहीं।

हमारे सर्वोच्च नेता दर्शनी हुंडी हैं। उनके पास आर्यसमाज के काम के लिए तो अवकाश ही नहीं। अंतरंग सभाओं में आकर या कुछ फाइलों पर हस्ताक्षर कर देने मात्र से ही उनका कर्तव्य समाप्त हो जाता है। किन्तु क्या संसार के सारे अज्ञान और पाखंड को चुनौती देने वाले संगठन के कर्णधार पूर्ण समय और निष्ठा के साथ आर्यसमाज के प्रति अर्पित नहीं होने चाहिएं ? अतः हमने आवश्यक समझा है कि आर्यसमाज की उस शक्ति को, जो सचमुच ऋषि दयानन्द की भक्त है, जो ऋषि को अपना गुरु मानती है, जो देव दयानन्द की जय के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना रखती है, संगठित किया जाए, केन्द्रित और जागृत किया जाए।

'दयानन्द-संसद्' आर्यसमाज के सभी संगठनों के रचनात्मक के कार्यों का समर्थन करेगी, सभी को सहयोग देगी और किसी का भी विरोध किए बिना जिस कमी को अनुभव करेगी उसे पूर्ण करने के लिए आर्यसमाजों व आर्य जनताका आवाहन करेगी

'दयानन्द-संसद्' के प्रथम अधिवेशन में जो कार्यक्रम निर्धारित हुआ। उसे ध्यान से पढ़िए, और देखिए वह कितना व्यावहारिक है। कोई कागजी योजना नहीं बल्कि सर्व साधारण जो आसानी से कर सकें—वही करने की प्रार्थना सभी से की गयी है।

'दयानन्द-संसद्' आर्यसमाज के भाग्याकाश पर आशा की वह ज्योति है, जिस का प्रकाश धरती को ही नहीं आर्यसमाज के सभी संगठनों को नयी प्रेरणा और शक्ति देगा। प्रकाश स्तम्भ बन कर दयानन्द-संसद् अंधकार और निराशा को मिटाने के लिए प्रत्येक संभव पग उठाने की प्रेरणा करेगी।

'दयानन्द-संसद्' ऋषि दयानन्द के सच्चे सैनिकों की आवाज बनकर एक समवेत स्वर में—'ऋषि दयानन्द की जय' बोलने की भावना आप के हृदय में भरेगी।

धीरे-धीरे दयानन्द के वह सैनिक एकत्र होंगें, जो सर पर कफन बांध सत्य की रक्षा का व्रत लेकर निकलेंगे। वेद-माता की रक्षा के लिए शहीद बनने की प्रेरणा युवकों में भरेगी। धरती के हर देश पर ओ३म् पताका लहराने के लिए प्राणों की आहुति देने की ललक जगाने का कार्य 'दयानन्द-संसद्' का कार्य होगा।

दिशाओं में अंधेरा है, प्रकाश चाहिए। प्रकाश के लिए प्राण और प्राणों के लिए बलि चाहिए। आत्मा की भूख मिटाने के लिए, ज्ञानामृत पिलाने के लिए युवकों की टोलियां अभियान के लिए तैयार करने का आवाहन दयानन्द-संसद् का आवाहन है।

जीवन पुकारता है, कौन सुनेगा यह पुकार ? धरती रोती है कौन सुनेगा यह रुदन ? मां की चीत्कार हृदय को बींधती हैं पर जिन का हृदय पत्थर हो गया हो वह कैसे दयानन्द की तरह विह्वल हो सकते हैं ?

इतिहास खून से लिखना पड़ता है, निर्माण बलिदान मांगता है, सत्य आहुति की शक्ति से पूजित होता है। आर्य बन्धुओ ! जागो और आर्यसमाज को ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज बनाकर क्रान्ति की ज्योति इतनी चमकाओ कि पाप—अज्ञान और मजहब धू-धू—कर जल उठें।

लक्ष्य पुकार रहा है, हम चल रहे हैं, जल रहे हैं, चलते रहेंगे, जब तक जीवन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। आओ हमारे साथ, उठो—दयानन्द का काम करो, पापों पर प्रहार करो—विजय बुला रही है—उस की जयमाला स्वीकार करो।

अच्छे आदमी बनो !

संसार के सभी मतानुयायी दुनियाँ से कहते हैं कि हमारे नाम को स्वीकार करो, किन्तु हमारा कहना केवल यह है कि तुम बस अच्छे आदमी बनो !

अच्छा आदमी वह, जो झूठ नहीं बोलता, किसी को तंग नहीं करता, सब की सेवा करता है और काम ईमानदारी से करता है। जो दूसरों के दुःख को अपना दुःख और सुख को अपना सुख समझता है।

इस धरती पर जितने भी मनुष्य और प्राणी हैं, परमात्मा उनका पिता है और वे उसके बेटे हैं। भाई-भाई के बीच कोई परदा नहीं, कोई दीवार नहीं, कोई झगड़ा भी नहीं होना चाहिए।

आपसी झगड़े, और देशों के युद्ध मनुष्य के शैतान बन जाने के कारण पैदा हो रहे हैं। गुणों से शक्तिशाली बनने के स्थान पर हम शक्ति से बलवान बन रहे हैं। पशुओं के स्वभाव का अनुकरण कर आज का मनुष्य जंगली जानवर बन गया है।

हमारा कहना है कि पशु मत बनो। मनुष्य वही है जो हर काम विचार कर करता है। सोचो, समझो और देखो कि जो भी तुम्हारी गतिविधियां हैं क्या वह ठीक हैं ? तुम्हें तुम्हारा आत्मा स्वयं उत्तर दे देगा।

तुम्हारे पास धन भी है और सारे भौतिक साधन भी, फिर भी क्या तुम सुखी हो ? क्या तुम्हें रात को अच्छी तरह नींद आती है ? यदि नहीं तो फिर अपना रास्ता बदलने के लिए क्यों नहीं सोचते ?

यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलेगा। परमात्मा तक पहुँचने का यही एक मात्र साधन है, इसको व्यर्थ न खो देना। बस आज से ही अच्छे कामों में लग जाओ ! ऐसे काम जिन्हें किसी से भी छिपाने की आवश्यकता तुम्हें अनुभव न हो।

तुम ऊपर उठो और देवता बनने का निश्चय करो ? अच्छा इन्सान ही परमात्मा के समीप बैठ सकता है। उस पिता की गोदी में बैठने के लिए हम आपको निमंत्रण दे रहे हैं।

व्रत कैसे टूटेगा ?

सैंकड़ों पत्र ऐसे मिले हैं जिन में हम से व्रत छोड़ने और अन्न ग्रहण करने का आग्रह किया गया है। बहुतों ने यह भी जानना चाहा है कि व्रत कैसे टूट सकता है !

हमने संकल्प इस लिए लिया था कि आर्यजनता में वेद के प्रति छायी उदासी को तोड़ा जाए। और उत्साह सर्वत्र संचालित हो। कोई असम्भव मांग हम ने नहीं की।

धनपति भले ही उदास बैठे रहें पर जन साधारण में उत्साह उभरे यह हमारी इच्छा है। श्रावणी वेद-प्रचार सप्ताह में यदि 'जन-ज्ञान' के सदस्य वेद-प्रचार के लिऐ कृत-संकल्प होकर कार्य करने का व्रत लेंगे तो हम सभी हितैषियों की इच्छा पर विचार करेंगे। हमें जीवन का मोह नहीं, इसकी आहुति हम वेद-प्रचार के लिए दे चुके। जीवन के अन्तिम पल तक 'वेद' का कार्य करेंगे, और मरना पड़ा तो इसी लक्ष्य के लिए मरेंगे प्रभु से प्रार्थना होगी कि अगले जन्म में भी अपनी वाणी के प्रसार का कार्य करने दे—सभी की शुभ कामनाओं के लिए आभारी हूं पर पत्र लिखने के स्थान पर 'वेद' के लिए कुछ कीजिए, इतना कीजिए कि हम संसार को वेद-मय बना सकें।

धन्यवाद—

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसन्न के आँसू !

आदरणीय श्री अध्यक्ष जी—!

मुझे आर्य समाज गुमानपुरा, कोटा की मार्फत ३५) में बुक किये वेद भाष्य की प्रथम जिल्द ऋग्वेद भाष्य के रूप में प्राप्त हुई। जैसे ही मैंने वेद भाष्य को पेकिंग केस से बाहर निकाला तो देखकर इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि प्रसन्नता के आँसू बहाये बिना न रह सका।

आर्य समाज गुमानपुरा कोटा के अन्य आर्य बन्धु भाष्य को देखकर इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष आदरणीय श्री भारतेन्द्रनाथ जी और उनके सहयोगी बन्धुओं ने वेद भाष्य के विषय में उस गीताप्रेस गोरखपुर को पीछे छोड़ दिया है जो सम्पूर्ण विश्व में धार्मिक साहित्य अत्यधिक सस्ता देता है।

अध्यक्ष जी ! मैं आपको स्पष्ट और साफ-साफ लिख रहा हूँ कि हमको आर्य समाज के अनेकसम्पादकों और उपदेशकों तथा प्रकाशकों ने कहा था कि श्री भारतेन्द्रनाथ जी आवश्यकता से अधिक चालाक हैं तुम्हारे रुपये डूब जायेंगें। थोड़े बहुत नेताओं को भाष्य दे देगा और शेष आम आर्यों के रुपये यह कह कर खा जायगा की क्या करूं, आप ने सहयौग नहीं दिया। मुझे लिखते हुए शर्म महसूस होती है कि सार्वदेशिक सभा तक के जिम्मेवार व्यक्तियों ने भी कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इतना कहने के बाद भी हम लोगों ने यह समझ कर रुपये भेजे कि जिन्होंने आर्य समाज के और दयानन्द के सिद्धान्तों पर मर मिटने की शपथ खाई है उनका मूल्यांकन हमें करना ही है। अन्त में यह घोषणापूर्वक कह रहा हूँ कि जब भी **आर्य समाज शताब्दी समारोह १९७५ का इतिहास लिखा जावेगा उस समय आप का कट्टर से कट्टर विरोधी भी वेद भाष्य के सम्बन्ध में आपकी प्रशंसा किये बिना रहना पाप समझेगा।**

आगे परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि वेद भाष्य का कार्य बिना किसी रुकावट के पूर्ण हो और आपको इतनी शक्ति दे कि आप महान् संकट की घड़ियों में भी अपनी भीष्म प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह सकें।

मैं आर्य समाज का एक तुच्छ सेवक हूँ। आर्थिक संकट से दुःखी हूँ धन से सहयोग करना तो मेरे लिये बहुत बड़ी बात है। परन्तु फिर भी धन्यवाद के हेतु हर्ष के दो आँसू और २) दो रुपये आर्थिक सहयोग के रूप में भेंट कर रहा हूँ स्वीकार करें। धन्यवाद !

उप मंत्री केन्द्रीय आर्य सभा कोटा (राज.)

आप का शुभ चिन्तक

रामकृष्ण आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

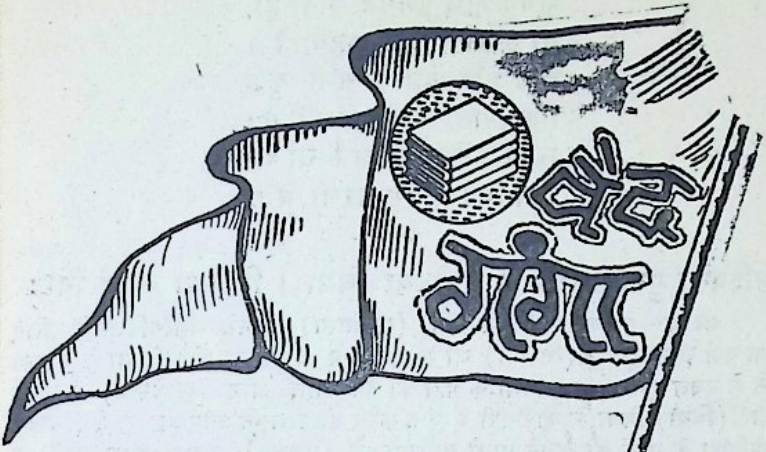

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३
का काव्यानुवाद

पदार्थ—महर्षि दयानन्द सरस्वती
काव्यार्थ—भारतेन्द्र नाथ

अथास्य द्वादशर्चस्य तृतीयसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः; ७-९ विश्वेदेवाः; १०-१२ सरस्वती देवताः । १, ३, ५-१०, १२ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ४, ११ पिपीलिका-मध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

१

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम्

पदार्थ—हे विद्या के चाहने वाले मनुष्यो ! तुम लोग (**द्रवत्पाणी**) शीघ्र वेग का निमित्त पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्धि करने में उत्तम हेतु (**शुभस्पती**) शुभ गुणों के प्रकाश को पालने और (**पुरुभुजा**) अनेक खाने पीने के पदार्थों के देने में उत्तम हेतु (**अश्विना**) अर्थात् जल और अग्नि तथा (**यज्वरीः**) शिल्प विद्या का सम्बन्ध कराने वाली (**इषः**) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरी की क्रियाओं को (**चनस्यतम्**) अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया करो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्या के इच्छुक हे मानव !
प्रेम भाव से प्रभु को जानो !
शुभ प्रकाश गुणमय पाना हो,
तो उसकी महिमा पहचानो ।।
ज्ञान और विज्ञान सभी कुछ
मिल जाता उसके चरणों में।
शिल्प अग्नि औ जल विद्या का,
ज्ञान मिलेगा प्रभु चरणों में ।।

२

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग (**पुरुदंससा**) जिनसे शिल्पविद्या के लिए अनेक कर्म सिद्ध होते हैं (**धिष्ण्या**) जो सवारियों में वेगादिकों की तीव्रता के उत्पन्न करने में प्रबल (**नरा**) उस विद्या के फल को देने वाले और (**शवीरया**) वेग देने वाली (**धिया**) क्रिया से कारीगरी में युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं, वे (**गिरः**) शिल्पविद्या के गुणों को बताने वाली वाणियों को (**वनतम्**) सेवन करने वाले हैं इसलिए इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो ।

अग्निदेव, जलदेव सभी के,
कर्म सिद्ध करते वरदान
वेग सभी को देकर भरते
सब में गति-जीवन मधु प्राण,
इनको सिद्ध किया जिसने वह
करता धरती पर है राज्य
विद्वानो ! यह सत्य जान लो
शक्ति उन्नति है अविभाज्य ।

३

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्त्तनी

पदार्थ—हे (**युवाकवः**) एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने (**सुताः**) पदार्थ विद्या के सार को सिद्ध करके प्रकट करने (**वृक्तबर्हिषः**) उसके फल को दिखलाने वाले विद्वान् लोगो ! (**रुद्रवर्त्तनी**) जिनका प्राणमार्ग है, वे (**दस्रा**) दुःखों के नाश करने वाले (**नासत्या**) जिनमें एक भी गुण मिथ्या नहीं (**आयातम्**) जो अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले हैं, उन पूर्वोक्त अश्वियों को जब विद्या से उपकार में ले आओगे उस समय तुम उत्तम सुखों को प्राप्त होओगे ।

प्रभु कहते हैं प्राण मार्ग पर
दुःख का रहता नहीं निशान,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तुम जानो विज्ञान सार तो
वन जाओगे गरिमावान
मिलन और पार्थक्य भेद को,
समझो यह जीवन आधार
प्राण सिद्ध जीवनदाता है
मौलिक विद्या का शृंगार ।

४

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः

पदार्थ—(चित्रभानो)—हे आश्चर्य्यप्रकाशयुक्त **(इन्द्र)** परमेश्वर ! आप हमको कृपा करके प्राप्त हूजिए । कैसे आप हैं कि जिन्होंने **(अण्वीभिः)** कारणों के भागों से **(तना)** सब संसार में विस्तृत **(पूतासः)**। पवित्र और **(त्वायवः)** आपके उत्पन्न किए हुए व्यवहारों से युक्त **(सुताः)** उत्पन्न हुए मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किए हैं, हम लोग जिनसे उपकार लेने वाले होते हैं, इससे हम लोग आप ही के शरणागत हैं।

हे प्रकाशयुत गरिमामय प्रभु,
मिल जाओ अन्तर में प्रान,
तुमने अपने व्यवहारों से
ताना है प्रभु शुभ्र वितान ।
तुम करते उपकार सभी पर
भरते सबके ही भण्डार
हम शरणागत नाथ तिहारे
झंकृत कर दो जीवन-तार ।

५

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः

पदार्थ— **(इन्द्र)** हे परमेश्वर ! **(धिया)** निरन्तर ज्ञानयुक्त बुद्धि वा उत्तम कर्म से **(इषितः)** प्राप्त होने और **(विप्रजूतः)** बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने योग्य आप **(ब्रह्माणि)** ब्राह्मण अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ और **(सुतावतः)** विद्या के पदार्थ जाने हों, तथा **(वाघतः)** जो यज्ञ विद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न करने वाले हों इन सबों की कृपा से **(उपयाहि)** प्राप्त हूजिए।

हे परमेश्वर ! ज्ञानयुक्त तुम
उत्तम बुद्धि करो प्रदान,
सब को दे पायें हम भी कुछ,
विद्या बल का प्रेरक दान,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभो ! तुम्हारे ज्ञान यज्ञ से,
सब का ही होवे कल्याण
कृपा तुम्हारी हो जाये तो,
दूर-दूर भागे अज्ञान ।

६

इन्द्रा ताहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः

पदार्थ—(हरिवः) जो वेगादिगुण युक्त (तूतुजानः) शीघ्र चलने वाला (इन्द्र) भौतिक वायु है, वह (सुते) प्रत्यक्ष उत्पन्न वाणी के व्यवहार में (नः) हमारे लिए (ब्रह्माणि) वेद के स्तोत्रों को (आयाहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, तथा वह (नः) हम लोगों के (चनः) अन्नादि व्यवहार को (दधिष्व) धारण करता है ।

जो चलता है वायु वेग से,
धारणकर्ता वह संसार
वेद ज्ञान का सार समझ कर,
जो करता अपने व्यवहार
उसका जीवन आनन्दित हो,
कर पाता अपना कल्याण
भौतिक बल से पुष्ट मनुज ही
प्राणसुधा का करता पान ।

७

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम्

पदार्थ—(ओमासः) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त शुभ गुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिए पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (चर्षणीधृतः) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने ((दाश्वांसः) अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करने हारे (विश्वेदेवासः) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुषः) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहें ।

अपने गुण से रक्षा करता
जीवों को जो देकर ज्ञान
ज्ञानशक्ति से विद्या पाकर
तृप्त हुआ जिसका विज्ञान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य सुधा जो बरसाता है
मनुज मात्र पर कर उपकार
सोम-जयी प्रभु देवें सब को
कर्म-भावना पर अधिकार ।

८

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि

पदार्थ—हे (अप्तुरः) मनुष्य को शरीर और विद्या आदि का बल देने और (तूर्णयः) उस विद्या आदि के प्रकाश करने में शीघ्रता कराने वाले (**विश्वे देवासः**) सब विद्वान् लोगो ! जैसे (स्वसराणि) दिनों को प्रकाश करने के लिए (**उस्रा इव**) सूर्य्य की किरण आती जाती हैं, वैसे ही तुम भी मनुष्यों के समीप (**सुतम्**) कर्म, उपासना और ज्ञान को प्रकाश करने के लिए (आगन्त) नित्य आया जाया करो ।

मनुष्ज मात्र को देह दान दी
किया ज्ञान विज्ञान प्रदान
प्रभु ने सबको सूर्य किरण दी ।
ज्योतिर्मय गति का दे दान ।
विद्वानो ! तुम रवि से सीखो ।
जग जो करता ज्योतिर्मान ।
तुम भी ज्ञान किरण फैला कर
बनो सूर्य से उज्ज्वलमान ।।

९

विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः

पदार्थ—(एहिमायासः) हे क्रिया में बुद्धि रखने वाले (अस्रिधः) दृढ़ ज्ञान से परिपूर्ण (अद्रुहः) द्रोहरहित (वह्नयः) संसार को सुख पहुँचाने वाले (**विश्वे**) सब (देवासः) विद्वान् लोगो ! तुम (मेधम्) ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को प्रीतिपूर्वक यथावत् सेवन किया करो ।

प्रभु कहता है सबल ज्ञान से
जीवन सफल बनाओ ।
परहित की बातें सोचो तुम
पर निन्दा बिसराओ ।
सुख की हो यदि तुमको इच्छा
द्वेष भावना छोड़ो ।
दुर्गुण जितने भी हैं जग में
सब से नाता तोड़ो ।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः

पदार्थ—(**वाजेभिः**) जो सब विद्या के प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, और जो उनके साथ (**वाजिनीवती**) विद्या से सिद्ध की हुई क्रियाओं से युक्त (**धियावसुः**) शुद्ध कर्म के साथ वास देने और (**पावका**) पवित्र करने वाले व्यवहारों को चिताने वाली (**सरस्वती**) जिसमें प्रशंसा योग्य ज्ञान आदि गुण हों ऐसी उत्तम सब विद्याओं की देने वाली वाणी है, वह हम लोगों के (**यज्ञम्**) शिल्पविद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ को (**वष्टु**) प्रकाश करने वाली हो ।

पावन करती यज्ञाग्नि जो,
सिद्ध हुई विद्या से प्राण ।
सरस्वती जो शुद्ध कर्म से,
मनुज मात्र का कर कल्याण ।
कल्याणी वाणी धरती पर,
विकसाती अन्नादि पदार्थ ।
योग्य ज्ञान की गुण गरिमा से
अन्तर जागृत स्वयं यथार्थ ।

११

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती

पदार्थ—(**सूनृतानाम्**) जो मिथ्यावचन के नाश करने, सत्य वचन और सत्य कर्म को सदा सेवन करने (**सुमतीनाम्**) अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्या वाले विद्वानों की (**चेतन्ती**) समझने तथा (**चोदयित्री**) शुभ गुणों को ग्रहण करानेहारी (**सरस्वती**) वाणी है, वही सब मनुष्यों के शुभ गुणों के प्रकाश करानेवाली यज्ञ आदि कर्म धारण करने वाली होती हैं ।

शुभ गुण ग्रहण किए जिसने,
वह वाणी ही कल्याणी है ।
सत्य वचन हैं इष्ट जिसे,
वह सरस्वती वरदानी है ।
वह प्रकाश धारण करती है,
मिथ्या का करती संहार,
सत्य कर्म से संचित बुद्धि,
करती सदा सब का उपकार ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति

पदार्थ—जो (सरस्वती) वाणी (केतुना) शुभ कर्म अथवा श्रेष्ठ बुद्धि से (महः) अगाध (अर्णः) शब्दरूपी समुद्र को (प्रचेतयति) जनाने वाली है, वही मनुष्यों की (विश्वाः) सब बुद्धियों को विशेष करके प्रकाश करती है।

अगाध शब्द रूपी समुद्र को,
जीवित कर भरती झंकार।
बुद्धि प्रेरणा, गति मानव की,
चला रही सारे व्यापार ।
ज्ञान ज्योति के महासिंधु से,
रत्न खोज कर लाती है ।
गुण गरिमा से अमृत जल
को मानस पर बरसातो है।।

मानलो कोई आदमी रोज १० बजे सोता है और ७ बजे उठता है। अब अगर वह ४० बरस तक ७ बजे को जगह ५ बजे उठा करे, तो इस छोटे से फर्क से उसकी उम्र में करीब १० साल की बढ़ोतरी हो जायेगी।

—डाडरिज

मेरा विश्वास करो जब मैं कहता हूँ कि वक्त की किफायत तुम्हें भविष्य में ऐसा लाभ पहुंचाएगो, जो तुम्हारे सबसे अधिक आशापूर्ण स्वप्नों से भी अधिक होगा और उसकी बर्बादी तुम्हारी कालो से काली कल्पनाओं से भी अधिक होगी और बौद्धिक और नैतिक पतन में तुम्हें विलीन कर देगी।

—ग्लैडस्टन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—आचार्य पं० प्रियव्रतवेदवाचस्पति

मृत्यु को तरने का उपाय

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं
यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना
तेनौदनेनातितराणि मृत्युम् ॥
अथर्व० ४।३५।३

अर्थ—(यः) जो (विश्वभाजसम्) सबको भोजन देने वाली (पथिवीं) पृथिवी धारण किये हुए है, (यः) जो (अन्तरिक्षतम्) अन्तरिक्ष को (रसेन) रस से (अपृणात्) पूर्ण करता है, (यः) जो (महिम्ना) अपनी महिमा से (दिवम्) द्युलोक को (ऊर्ध्वः) ऊपर (अस्तभ्नात्) थामे हुए है (तेन) उस (ओदनेन) सबको रस देने वाले परमात्मा की सहायता से (मृत्युम्) मृत्यु को (अतितराणि) तर जाऊं।

उस प्रभु की महिमा महान् है। जिस धरती पर बहने वाले पानी और उगने वाले अन्न, फल और औषधियों से मनुष्य से लेकर कीट-पर्यन्त सब प्राणी अपना भोजन प्राप्त करते हैं, उस धरती को प्रभु ने ही सुरक्षित रूप में धारण किया हुआ है। जिस अन्तरिक्ष से बादलों से बरसने वाले और ओस के रूप में पड़ने वाले पानी से सब प्राणी और वनस्पतियां रस-लाभ करते हैं, उस अन्तरिक्ष में यह रस उसी प्रभु की शक्ति से आता है। जिस द्युलोक दिन में प्रकाश-पुंज सूर्य और रात्रि में मनोहर चन्द्रमा और तारे चमकते हैं और उसके विराट् (Sublime) रूप का परिचय देते हैं, उस विराट् द्युलोक को अपनी जगह पर उसी प्रभु ने थाम रखा है। यदि इन तीनों लोकों के नीचे प्रभु की सत्ता का सहारा न हो तो इनमें से कोई सा भी एक क्षण के लिए नहीं रह सकता।

ऐसी महान् महिमावाला प्रभु ही हमें मृत्यु के भय और जन्म-मरण के क्लेश से बचा सकता है। हम मृत्यु को जीतने और अमृत प्राप्त करने के लिये उसी रसस्वरूप का आश्रय लेते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदरणीय !

आप का भेजा हुआ वेद भाष्य का प्रथम भाग मिला। धन्यवाद !

"जन-ज्ञान" में यह पढ़ कर दुःख हुआ कि आप ने अन्नादि खाना बन्द कर दिया है। आप यह सब प्रभु का कार्य कर रहे हैं। और प्रभु की प्रेरणा से कर रहे हैं, फिर यह क्यों लिखते हैं कि मैंने पागलपन किया है। पागलपन नहीं किया। मेरे प्यारे प्रभु आपके द्वारा अपनी वाणी को प्रकाशित कराना चाहते हैं। आप अपने पर विश्वास रखें। कल्याणकारी प्रभु—अपना कार्य स्वयं करेंगे।

आप कृपया अन्नादि का व्रत त्याग दें और यह व्रत लें कि आप प्रतिदिन २ घंटे माँ गायत्री की गोद में बैठेंगे। अर्थात् गायत्री माता का मानसिक जप करेंगे। आप मेरे से ज्यादा ज्ञानी हैं। मुझे ऐसा तो नहीं चाहिए था कि मैं आपको उपदेश दूं तो भी मैं अपना यह फर्ज समझता हूँ कि आपसे कहूँ कि गायत्री माता सबकी कामना पूर्ण करती है।

उसी की कृपा से मैं फलित हो रहा हूँ। आशा है कि इस पत्र के मिलते ही आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

मैं आपको १००) प्रति मास भेजता रहूँगा। १००१) श्री मान लक्ष्मी नारायण जी तथा श्रीमती दुर्गादेवी जी से भी भिजवा रहा हूँ।

गोहाटी

—नारायण दास (डाक्टर)

●●●

आदरणीय !

जनज्ञान का मई अंक प्राप्त हुआ, जिसके देखते ही जहाँ प्रसन्नता हुई कि आपने जहाँ वेद भाष्य का २५ प्रतिशत से अधिक कार्य पूर्ण करके इसका पहला भाग वितरित कर दिया है वहां आपका धैय बाकी कार्य की पूर्ति के लिये क्षीण हो रहा है, नहीं तो आप अन्न, नमक और मीठा ग्रहण न करने का व्रत न लेते।

क्या आपके पांच हजार सदस्य आपकी यह छोटी सी चेतावनी स्वीकार न करेंगे ? जिस कार्य को आपने आरम्भ करके पूर्ति के निकट ला रखा है, वह पूर्ण करने में अन्तिम सहयोग न देंगे ?

जहां आपके जन ज्ञान के ५००० सदस्य हैं वहाँ इससे कई गुना उसके पाठक होंगे यदि सभी पाठक तथा सदस्य मिलकर थोड़ा थोड़ा सहयोग भी दें तो हमें पूर्ण आशा है कि बाकी के तीन अंक भी निश्चित समय से पहले ही प्रकाशित हो जायेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभी हमें आपकी सेहत तथा आयु की बहुत आवश्यकता है। जो कार्य स्वामी दयानन्द का पूर्ण करने के लिए आप अकेले कर रहे हैं वह शायद आपके सारे सदस्य मिल कर भी न कर सकें। हमें पूरी आशा है कि आपकी इस चेतावनी को पढ़ कर सदस्यों तथा पाठकों द्वारा आपको ज्ञात हो गया होगा कि आपके पीछे कितने ही दयानन्द अनुयाईयों की, जिनमें संसार से अज्ञानता दूर करने की इच्छा है आपके साथ हैं।

आप कृपया अपना प्रण वापस लें। धन्यवाद—

विनीत

धर्मपाल धवन, किरण खुराना

लखनऊ

●

प्रिय पंडित जी सप्रेम नमस्ते।

आपके वेद को गाजियाबाद में देखा। बहुत बढ़िया है। आप धन्यवाद के पात्र हैं। वेद का यह बड़ा हित है। अंग्रेजी का सत्यार्थ प्रकाश भी देखा। यह काम भी आपका उत्तम रहा। ये सभाएं जो काम नहीं कर सकीं वह आपने अकेले कर दिखाया। आगे काम दानियों का है। बहुत-बहुत धन्यवाद।

बरेली

—बिहारीलाल शास्त्री "शास्त्रार्थ महारथी"

●

श्री मान् महोदय जी !

दयानन्द संस्थान द्वारा प्रकाशित चतुर्वेद भाष्य के विमोचन समारोह का निमंत्रण मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रथम खण्ड तैयार हो गया। आपने जो गुरुतर कार्यभार उठाया है प्रभु आपको बल दें कि उसे सम्पन्न कर सकें।

अजमेर

—भगवान स्वरूप न्यायभूषण

ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाषा भाष्य का प्रथम भाग प्रकाशित हो गया

यह भाग ऋग्वेद के ६ मण्डल तक पूरा हुआ है। इसमें २०×३०/४ साइज के ६०० पृष्ठ हैं। "दयानन्द संस्थान" की मन्त्री—पंडिता राकेश रानी ने इसका प्रकाशन किया है। कागज, टाइप और मुद्रण उत्तम है। इस भाग की जिल्द बड़ी दृढ़, रंगीन और पक्की है। मूल्य ३१ रु० मात्र है। पुस्तक का बहिरंग भी अन्तरंग के ऋषि भाषा भाष्य के अनुरूप ही आकर्षक है। आरम्भ में संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्र नाथ साहित्यालंकार ने अपने सहयोगियों के प्रति आभार रूप प्रकट किये है। साथ ही ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाष्य में दी गई भूमिका का प्रकाशन किया है। जनता में वेदप्रचार के पवित्र कार्य में इनका सारा परिवार लगा हुआ है। इस उत्तम कृति के लिये हम इन्हें हार्दिक बधाई देते हैं और इनके परिवार के लिये साधुवाद। हमें आशा है कि इसी प्रकार शेष वेद भाषा भाष्य की अन्य तीन जिल्दें भी यथा समय प्रकाशित हो जावेंगी।

सम्पादक आर्य मर्यादा दिल्ली

—जगदेव सिंह सिद्धान्ती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परमधर्म की पुकार

सम्पादक जी,

लगभग एक सहस्र वर्ष की परतन्त्रता के पश्चात् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। हमें विदेशियों के पाश को काटने के लिए असंख्य कठिनाइयां एवं अनेक विपदाएं झेलनी पड़ीं। हमारी स्वतन्त्रता हमारी मातृभूमि की उत्कृष्ट आत्माओं एवं महान पुरुषों के त्याग व परिश्रम का सुपरिणाम है।

अब हमारा परमावश्यक कर्त्तव्य है कि अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करके इसकी उदात्तता विश्व में स्थापित करें। निसन्देह अंग्रेज भारत से चले गये हैं, परन्तु उनके दूत ईसाई (विदेशी) मिशनरियों के रूप में अब भी यहां हैं। वे हमारे देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपनी संख्या बढ़ाने का प्रत्येक सम्भव उपाय कर रहे हैं। लोगों को ईसाई बनाने के लिए उचित व अनुचित साधन प्रयोग में लाये जा रहे हैं। सबसे पहले १२६१ ई० के पश्चात् के वर्ष में ईसाई मिशनरी जान डी माटे कोहाईव ने भारत के विभिन्न भागों के एक सौ व्यक्तियों को ईसाई बनाया और आज उनकी संख्या एक करोड़ से भी ऊपर पहुँच गई है।

हमारी सरकार धर्मनिरपेक्ष है और विधान के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह अपने सिद्धान्तों व विचारों का प्रचार करें। ईसाई मिशनरी इस धार्मिक स्वतन्त्रता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। विदेशी ईसाई मिशनरियों की संख्या स्वतन्त्रता के बाद बहुत अधिक बढ़ी है। विदेशी शासन में उनकी संख्या १७०० थी और अब ५००० तक पहुंच गई है। मानव सेवा की आड़ में उनका उद्देश्य भारत में राजनैतिक सत्ता प्राप्त करके ईसाई स्थान बनाने का है।

ईसाई मिशनरियों, जिनके पास विशाल साधन व प्रभूत सम्पत्ति है, उन का प्रतिरोध करना कोई सरल कार्य नहीं है।

ईसाइयत के अत्याचारों से हिन्दू सभ्यता व संस्कृति खतरे में है। इनकी रक्षा करना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्त्तव्य है।

—ल्यूसनडर्न

पूरनपुर

आर्यसमाजी दायित्व समझें

मान्यवर अध्यक्ष जी,

सादर नमस्ते।

मुझे आप द्वारा संचालित कार्यों पर महती प्रसन्नता और गर्व है। मैं आप की तथा संस्थान के अन्य कार्यकर्ताओं की वेद और दयानन्द के लिए किए जा रहे कार्यों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता हूं। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब इस वसुंधरा को वेदमय बनाने का स्वप्न साकार होगा। परन्तु कब होगा? यह सभी आर्यजनों के लिए एक चुनौती है। सुझाव रूप से कुछ विचार ये हैं :—

(१) देश विदेश के प्रमुख बुद्धिजीवी व्यक्तियों तक वेदभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश और ऋषि जीवनी पहुँचाई जाए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) विद्यार्थियों तथा अल्पशिक्षित समाज के लिए विशेष पुस्तकें तैयार करके प्रसारित की जाएं जिसमें भारत का प्राचीन राष्ट्रीय गौरव, पतन और उत्थान की कहानी आर्यसमाज का योगदान तथा धर्म का स्वरूप सरल भाषा में स्पष्ट किया जाए।

(३) गुरुडम और पाखण्ड के विरुद्ध विशेषकर बालयोगी, आनन्दमार्ग आदि के विरुद्ध प्रभावशाली प्रचार ट्रैक्ट बांटे जाएं तथा योग का वास्तविक रूप स्पष्ट किया जाए।

(४) शराब, सिनेमा के वर्तमान स्वरूप से देश नैतिक पतन के कगार पर खड़ा है। देश का नैतिक उत्थान केवल आर्यसमाज ही कर सकता है। इसके लिए धुंआधार प्रचार की आवश्यकता है।

इन सभी कार्यों के लिए यदि प्रत्येक स्थान का आर्यसमाज अपना उत्तरदायित्व समझे और अपने आसपास के क्षेत्र में प्रचार की पूरी जिम्मेवारी लेकर कार्य क्षेत्र में उतरे तो सफलता अवश्यंभावी है।

अन्त में मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'दयानन्द संस्थान' के अन्तर्गत मैं भी अधिक से अधिक जितना भी कार्य कर सकूंगा, करता रहूँगा और संस्थान की जो भी सेवा मेरे लिए हो सकेगी उसके लिए मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझूंगा।

गुहना (कुरुक्षेत्र) —ओमप्रकाश (विज्ञान अध्यक्ष)

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी कैसे मनाएं ?

आदरणीय,

प्रभु चरणों में प्रार्थना है कि आप पर सब दृष्टि से प्रभु कृपा करें और आपने जो व्रत लिया है उसको पूरा करने का समार्थ्य दें। आपने चार-पांच साल में जो काम किए हैं वही स्तुतियोग्य कार्य हैं। और ऋषि दयानन्द के भक्त बोलने वाले नहीं करने वाले हैं यह बता दिया हैं। आर्यसमाज का संगठन जो ठंडा पड़ा था उसको भी जगाने का काम आपने किया है। आपने जो साहित्य निर्माण का काम शुरू किया है वह असलियत और सच्चा काम जो सौ साल में नहीं हुआ था आपने करके दिखाया प्रभु आप पर इसके आगे भी कृपा करें और ऐसे ही काम करवा लेवें।

आपने जो सोचा है वह बिलकुल सही है। आपके दिये हुए दो विषयों पर मेरे विचार पत्र द्वारा लिख रहा हूँ। उचित लगा हो तो आप कुछ कीजिए।

(१) आर्यसमाज शताब्दी कैसे मनायी जाय ?

बेकार पैसा खर्च करने के बजाय पैसा केवल

(i) साहित्य वितरण करने में (सस्ता मुफ्त)

(ii) आज के बड़े बड़े सुशिक्षित विद्वान् कहलाए गये हुए गैर आर्य समाजी लोगों को निमंत्रण देकर इकट्ठा किया जावे और

राष्ट्रीय ऐक्य—राष्ट्र प्रेम—

जीवन में शान्ति और सुख—धर्म की आवश्यकता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म और मजहब—

ईश्वर का सच्चा स्वराज्य मूर्तिपूजा आदि बहुत सारे

विषयों को सामने रखकर हिन्दू का भविष्य क्या हो सकता है ? यह बताकर हिन्दू (आर्य) अगर नेस्त नाबूत नहीं होना चाहता तो सब पाखण्ड छोड़ कर वैदिक धर्म में शरण आने की विनती की जाय। वैदिक धर्म केवल मानवता मानता है इसलिए मुस्लिम, क्रीश्चियन भी आ सकता है पर ऊपर का कवच उतार कर।

(iii) चाहें तो वादविवाद रखें जाएँ (शास्त्रार्थ)

(iv) आर्यसमाज आज गतिशील नहीं, उसको गतिशील बनाने के लिए क्या किया जाए इस पर विचार हो।

(v) आर्यसमाज को गतिशील बनाना होगा तो केवल सिद्धान्त को ही सोचना नहीं तो उसके साथ आज सामाजिक जो बीमारियां हैं उसके बारे में जो भी अज्ञान है उसके विरुद्ध पुकारना है। लाट्री, नशा, सिनेमा, धूम्रपान आदि से लोगों को छुड़ाना है। ऐसा छुड़ाने से लोग आपके पास आएंगे।

(VI) शताब्दी के अवसर पर आये सब सज्जनों ने अपने जीवन में की सब बुराईयां छोड़ देने का व्रत धारण करें।

(VII) आर्यसमाजी भी केवल सैद्धांतिक बहुत हो गये है। आचरण में उनको भी सभी के साथ सब चाहता है इसीलिए—आर्य सज्जनों ने चाय छोड़ देना, सिनेमा छोड़ देना, पान छोड़ देना, सादगी जिंदगी में कीजिए।

(VIII) सर्व "धर्म" एक प्रसिद्ध विद्वान् बताकर उसमें धर्म, ईश्वर, प्रकृति, जीव आदि विषय पर विचार विनिमय किया जाय।

(IX) शुद्धिकरण का भी एक भाग रखना।

(X) अन्तर्जातीय विवाह के बारे में विचार विनिमय।

(XI) दहेज निर्मूलन—

(XII) संस्कार का महत्व आदि के बारे में जानकारी आर्यसमाज शताब्दी बिल्कुल सादगी में होना, नारे देने के बजाय काम होना। संस्कृत का महत्त्व भी लोगों को समझाना है। योगाभ्यास ही केवल स्वास्थ्य, सच्चाई के लिए एकमेव है यह भी बताना होगा।

आसन प्राणायाम के लाभ भी बताना होगा और वह सम्मेलन में तो एक कार्यकर्त्ता शिविर के लिए जैसा होना कुछ Plan बना कर अपने-अपने भागों में तन, मन, धन के एक साथ काम करने की प्रतिज्ञा करवाना है। विद्यार्थियों का भी एक उसमें शिविर होना है।

(XIII) सब कालेज, विद्यापीठ, पाठशालाएँ दफ्तरों को अपने कार्यक्रम के पत्रांक भेजना पड़ेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(XIV) आज राष्ट्रीय ऐक्य धोखे में है इसीलिए राष्ट्रीय ऐक्य के लिए आर्यसमाज आगे है यह बताना पड़ेगा और लीडरों को समझाना पड़ेगा।

(XV) आज देश को चारित्र्य की भी जरूरत है इसके लिए भी आर्यसमाज ही एकमेव संस्था है ये बता देना पड़ेगा और ये दोनों राष्ट्रीय कामों को लेकर लोगों की सहानुभूति मिलानी पड़ेगी और अपना प्रचार करना पड़ेगा।

(XVI) वैदिक सिद्धान्त आर्यसमाज केवल नाम लेने के बजाय राष्ट्रीय ऐक्य चारित्र्य निर्माण सामाजिक कष्ट निर्मूलन, सुखी जीवन आदि के नाम पर ही आपने सिद्धान्त देना चाहिए।

संस्कृत भाषा सम्मेलन—
योगाभ्यास सम्मेलन—अध्यात्म—
शिक्षा पद्धति-सुधार सम्मेलन—
सामाजिक रोगों की चिकित्सा
साहित्य—
आदि सब दृष्टि से सोचना पड़ेगा।

(XVII) शताब्दी के अवसर पर ज्यादा से ज्यादा लोगों को आने के लिए रेल, बस कन्सेशन की व्यवस्था की जाय। अब तक इस बारे में हमने सोचा नहीं पर राष्ट्रीय कार्य के लिए उच्च स्तर पर केवल ये प्रयत्न किया गया तो कन्सेशन की व्यवस्था हो सकती है। शताब्दी समिति के प्रमाण पत्र पर रेल कन्सेशन दिलवाने की कोशिश करनी चाहिए।

हो सका तो हर एक विद्यापीठ, कालेज से एक-एक प्रतिनिधि भी बुलाया जाय। बाकी तो आप लोग बहुत कुछ बता सकते हैं पर आज हमारे आचरण की संयम की, त्याग की तपश्चर्या की आवश्यकता है यह नहीं भूलना। इसके अभाव में तो शिथिलता आ गई है।

(२) सारे देश को वैदिक विचारधारा में प्रभावित करने के लिए—

(१) शिक्षा प्रणाली बदलनी पड़ेगी।

(२) आपकी स्वतंत्र प्रणाली (शिक्षा) होनी होगी।

(३) साहित्य वितरण—

(४) प्रचारक ज्यादा और मन से काम करने वाला होगा।

(५) अज्ञान को दूर करना होगा।

(६) जाहीरात देते रहना पड़ेगा। ठीक राष्ट्रीय ऐक्य, मानवता ऐक्य, सुख का होना है तो केवल वैदिक विचारधारा ही सामर्थ्य को हल कर सकती है। ऐसा बताना पड़ेगा।

(७) अपने आचरणों से वैदिक विचार श्रेष्ठ है यह बताना होगा।

(८) सामाजिक बीमारियों का विनाश करके सामाजिक सेवा करना अपना एक अंग रखना चाहिए।

(९) आज जीवन Mechanical हो गया है। हर कोई व्यवहारी दृष्टिकोण से सोचता है। इसीलिए लोगों को उनके फायदे से वैदिक सिद्धान्त की ओर जाना है।

(१०) आज दुनिया में अनेक वाद से लोग भ्रष्ट हो गए हैं। सभी के सामने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह एक ही मार्ग है यह बताना होगा।

(११) लीडरों से, सरकार से इस मामले में समझना होगा।

(१२) सामाजिक रोगों को दूर करने के लिए आज कार्य करना होगा।

(१३) वैज्ञानिक दृष्टि से बाकी सभी का खण्डन करना चाहिए।

(१४) वर्ण व्यवस्था आश्रम व्यवस्था का लाभ बताना होगा।

(१५) रेडियो से प्रचार होना चाहिए। साहित्य की घोषणा गैर आर्यसमाजी पेपर में देनी चाहिए।

(१६) ज्यादा से ज्यादा वानप्रस्थी और संन्यासी बनकर प्रचारक और शिक्षा देने का काम करना चाहिए।

(१७) गरीबों के लिए आर्थिक सहायता देकर भी आप ने पास कराना होगा।

(१८) गरीब बच्चों के लिए मुफ्त रहने की खाने की व्यवस्था करके वैदिक विचारधारा का प्रचार करना। सब से कमी आदमियों की है इसीलिए आदमी का तैयार होना और सब मिल कर काम करना तो बस, जल्द ही यश है।

(२०) राजकर्मचारी वराजनैतिक लोग इस संस्था के पदाधिकारी न रहें।

परली बैजनाथ

आपका—सु० ब० काले M. Sc. Ph. D.

हार्दिक अभिनन्दन

श्री आदरणीय पं० जी,

अध्यक्ष दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली—५

आपका दि० ७-६-७३ का पत्र कल मिला और साथ ही वेद भाष्य का प्रथम भाग भी आज ही वी० पी० से मिला। वेद भाष्य की सजावट, अक्षर, छपाई-कागज आदि सभी कुछ बढ़िया तथा आकर्षक बन पड़ा है। ग्रन्थावलेकन से ही हम कृतार्थ हो गये ऐसा प्रतीत हुआ। ऐसी सुन्दर महान् चिरस्मरणीय वेद प्रचार सेवा के लिए आर्य जगत् ही नहीं, सारा विश्व आपका ऋणी रहेगा। इस महान साधना के लिए आपका जितना भी अभिनन्दन किया जाए, सो स्वल्पमेव है। हम आपका हार्दिक अभिनंदन करते हैं। प्रभु आपको बल-बुद्धि अधिकायु दें जिससे वैदिक साहित्य की महान सेवा कर सकें। इसी प्रकार षड् दर्शनों, ब्राह्मण-सूत्र ग्रन्थों आदि के प्रामाणिक भाष्य प्रकाशित कर यशोभागी आप बनें तो महती समाज की सेवा होगी। आशा है आप इसी तत्परता से वैदिक साहित्यभिवृद्धि करते रहेंगे।

२—हमारे यहाँ से सभी सदस्यों ने एक ही जिल्द में भाष्य लेना स्वीकार किया था किन्तु ज्यों ही आज प्रथम भाग देखा तो सभी के मन में प्रलोभन पैदा हो गया। सभी मंत्रमुग्ध से हो गये। अतः सभी का मन मस्तिष्क परिवर्तित हो गया और कहने लगे कि—हमें भी चारों भागों में ही वेद भाष्य मंगवा दें। इसलिए विनम्र प्रार्थना है कि निम्नलिखित पते पर वेद भाष्य के प्रथम भाग की ७ सात प्रतियाँ प्लास्टिक कवर के साथ रेलवे पार्सल से शीघ्र ही भेजने की कृपा करें।

निजामाबाद

—सी० एच० गंगाराम आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश वितरण
कर महर्षि का संदेश फैलाइए ।

अपनी

आवश्यकताओं

वर-वधू

करो बावि

के लिये

जनज्ञान

में

विज्ञापन दीजिए

———

धन भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें । वी० पी० न मंगाएं । पत्र मिलते ही धन भेज दें । —सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार

आप क्या बनना चाहते हैं ?

पशु,
मनुष्य
या
देव ?

१. असतो मा सद्गमय

(अभाव से भाव की ओर)

संसार में मनुष्य जब किसी भी वस्तु को देखता है, तो उस देखने की क्रिया में 'आत्मयुक्त बुद्धि मन तथा इन्द्रियां' ये सभी कार्य कर रहे होते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि, केवल इन्द्रियों से हम किसी भी चीज को देख नहीं सकते। यदि मन कहीं और हो तो आंख देखती हुई भी देख नहीं रही होती, कान सुनता हुआ भी सुन नहीं रहा होता। "अन्यत्रमना अभूवम् नाश्रौषम्"—मेरा मन कहीं और था, सो सुना नहीं है—यह अनुभव सभी का है। परंतु इन्द्रियों के साथ मन के हो जाने से भी देखने आदि की क्रिया निष्पन्न नहीं हो जाती। चूँकि, बुद्धियुक्त आत्मा यदि मन के साथ न हो, या सुषुप्ति अवस्था में हृदय में सो रहा हो, तो किसी भी वस्तु का दर्शन व श्रवण सम्पन्न नहीं होता।

एवं, यह तो स्पष्ट है कि किसी भी वस्तु की सत्ता का ज्ञान निम्न क्रम से ही होगा:—

(१) आत्म युक्त बुद्धि+मन।
(२) मन+इन्द्रियाँ।
(३) इन्द्रियाँ+अर्थ।

इस प्रकार के सम्बंध से पूर्व किसी भी वस्तु की हमारे लिये सत्ता नहीं होती परंतु इस प्रकार का सम्बन्ध हो जाने पर हमें वस्तु की सत्ता का ज्ञान हो जाता है "हम असत् से सत् पर" पहुँच जाते हैं। अभाव से भाव में आ जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु, यह तो Sensation मात्र है। यह ज्ञान मुख्यतः इन्द्रियजन्य कहलाता है। इस ज्ञान में हमारा मन अभी कोई प्रमुख भाग नहीं ले रहा होता। उस व्यक्ति को यह जानते हुए भी कि 'वह है,' हम नहीं जानते कि वह "कैसी है"। इसी Vision (ज्ञान) को नैयायिक 'निर्विकल्पक' (Non-determinate) यह नाम देते हैं।

२. तमसो मा ज्योतिर्गमय

(अंधेरे से प्रकाश की ओर)

हम ऊपर असत् से सत् की ओर पहुंचने का उल्लेख कर चुके हैं। हमने वस्तु की सत्ता को जान लिया तो क्या ? उसके विषय में जाना तो कुछ नहीं। रहे तो अंधेरे में।

परन्तु, अब इन्द्रियों से हम आगे बढ़ते हैं। हमारा मन दर्शन-क्रिया में प्रमुख भाग लेने लगता है। उस वस्तु के गुण-दोषों की तुलना प्रारम्भ करता है। अन्य वस्तुओं के साथ उसकी अपेक्षित स्थिति का विचार करने लगता है। उसका भिन्न दृष्टियों से संश्लेषणात्मक व विश्लेषणात्मक संख्यान (विचार) करता है, उस वस्तु के विषय में नाना प्रकार के संकल्प व विकल्प उठाता है।

अब उस वस्तु के विषय में हम अंधेरे में नहीं। हमें उस वस्तु का केवल Sensation न हो Perception होता है। उसका निर्विकल्पक ज्ञान ही न रह सवि-कल्पक (Determinate) ज्ञान हो जाता है। संवेदन मात्र न रह कर अवगमन हो जाता है। अब हम उस वस्तु के विषय में अंधेरे में नहीं, हम उसे वैज्ञानिक प्रकाश में देख रहे हैं। और इस प्रकार हम **"अंधेरे से प्रकाश की ओर"** बढ़ आये हैं।

३. मृत्योर्मा अमृतं गमय

(मृत्यु से अमृत की ओर)

इस सविकल्पक ज्ञान से भी हम एक कदम और आगे बढ़ जाते हैं, जब कि स्वयं आत्मयुक्त बुद्धि हमारी दर्शन-क्रिया में प्रमुख भाग लेने लगती है, उस समय हम वस्तु के अन्दर तक एक सौंदर्य का अनुभव करने लगते हैं, उसके अवयवों के विन्यास में एक अवस्था को देखने लगते हैं, अन्य वस्तुओं के साथ उसके एक सम्बन्ध का दर्शन करने लगते हैं।

आकाश के तारे अब अव्यवस्थित, बिखरे हुए न दीख, व्यवस्थित व क्रमस्थित दीखने लगते हैं। इस समय हमें उन तारों का Sensation (संवेदन) व Perception (अवगमन) होने के बाद Conception (अवधारण) हो रहा होता है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु परस्पर सम्बद्ध दीखने लगती है। सब पदार्थों में एक व्यवस्था-सौंदर्य-अनुपम रचना प्रतीत होती है। कुछ अद्भुतता मालूम देती है, प्रत्येक वस्तु विचित्र Wonderfull सी प्रतीत होती है। वस्तुतः उस वस्तु के 'उस नश्वर स्वरूप से ऊपर उठ हम उस चित्र के अमर कर्ता की ओर जाने लगते हैं''। व्यवस्था से व्यवस्थापक को पहचानने लगते हैं। सौंदर्य से सौंदर्यकर्ता को सोचने लगते हैं, जो कि अमर है।

इस समय उस वस्तु का नश्वर स्वरूप हमारे Vision का मुख्य विषय नहीं रहता। अपितु, उसके अन्दर ओत प्रोत अमर सूत्र को हम देखने लगते हैं। गीता के शब्दों में, धर्मों को छोड़ धर्मी की ओर बढ़ते हैं। बस, हम, **मृत्यु से अमृत की ओर** चले जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. प्रतिबोधविदितं मतम्

अरे, इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि हम किसी भी वस्तु को देखने लगे, तो अन्ततोगत्वा हम उस अमर शक्ति परमेश्वर का ही अनुभव करने लगेंगे। यही तो बात है कि जिन मनुष्यों की दर्शन-क्रिया में इन्द्रियों का ही प्रमुख भाग रहता है, जिनका मन निर्मल नहीं है, वे वस्तुओं की सत्ता को बेशक जानते हैं, परन्तु उन वस्तुओं का उन्हें वैज्ञानिक ज्ञान नहीं होता। ये मनुष्य पशुओं से कुछ ही ऊपर हैं। ऊपर क्या, पशु ही हैं। वे वस्तु को बस (पश्यतीति पशुः) देखते मात्र हैं। जानते कुछ नहीं।

इसके आगे जब मन दर्शन-क्रिया में प्रमुख भाग लेता है, तो मनुष्य को उस का वैज्ञानिक ज्ञान हो जाता है। वह उस वस्तु की गहराई तक पहुँचता है, वह उसके केवल पृष्ठ को नहीं देख रहा होता। उस वस्तु के विषय में मनन कर वह उसके तत्व तक पहुंच रहा होता है। और इस प्रकार केवल सत्ता मात्र को देखने वाली पाशविक स्थिति से ऊपर उठकर मनन करने से मनुष्य कोटि कहलाता है। (मननात् मनुष्यः)

परन्तु इससे भी आगे जब उसका आत्मा दर्शन-क्रिया में भाग लेता है, तो उसे प्रत्येक वस्तु का एक Poetic (काव्यमय) दर्शन होता है, जो कि इस निखिल काव्य के कर्त्ता की ओर उसे ले जाता है। वह स्थिति शब्दों से दर्शनीय नहीं रहती। उसमें आश्चर्य, चित्रता, अदभुतता व विस्मय के अनुभव की ही प्रधानता होती है। उस समय प्रत्येक वस्तु में उसे ईश्वर का दर्शन हो रहा होता है। इसी से तो उपनिषदों में परमेश्वर को "प्रतिबोधविदित प्रत्येक ज्ञान के समय जाना गया कहा है: और सच-मुच इस समय मनुष्य मनुष्य न रह कर दिव्य ज्योति के प्रकाश से जगमगाते हुए हृदय वाला होता है। वह मनुष्य ही न रह (दीव्यति=द्योतते) देव बन जाता है।

क्या प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह पशु व मनुष्य की स्थिति से ऊपर देव स्थिति को प्राप्त करे। असत् से सत् की ओर आता हुआ, अंधेरे से प्रकाश की ओर आकर मृत्यु से अमृत तक पहुँचने का प्रयत्न करे।

बुझी लालटेन

जब जापानी भिक्खु की बारी आयी, तो वह कहने लगा—"मेरे गुरुजी एक किस्सा सुनाया करते थे। कोई अंधा आदमी रात को अपने मित्र के यहाँ से घर लौटने लगा, तो मित्र ने जलती लालटेन उसके हाथ में थमा दी। अंधा हंसा, बोला—यह मेरे किस काम आयेगी? मित्र ने कहा—लालटेन देखकर लोग तुम्हारे लिए रास्ता छोड़ देंगे, इसलिए इसे ले जाओ।" हजार बार सुना किस्सा सुनते हुए मुझे जम्हाई आ रही थी; पर भिक्खु का बोलना जारी था—"अंधा लालटेन लेकर चल पड़ा और रास्ते में जब एक आदमी उससे टकरा गया, वह झल्लाया—आँख मूंदकर चल रहे हो क्या? दिखती नहीं मेरे हाथ की लालटेन! इस पर उस आदमी ने उत्तर दिया—पर भाई, तुम्हारी लालटेन तो बुझी हुई है।" कहानी के इस नये मोड़ ने मुझे चमत्कृत और चिंतनमग्न कर दिया। सच है, लालटेन जल रही है या नहीं यह देखने के लि भी तो आँखें चाहिए। आज के ज्ञान और जीवन-संदर्भों की कसौटी पर कसे बिना धर्मग्रन्थों की मान्यताओं अथवा आर्थिक राजनैतिक वादों को अपनाकर चलने वाले हम लोग भी उस अंधे के भाई-बन्द ही तो हैं। —दत्तोपन्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

प्रो० विश्वनाथ, विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

आत्मविद्या

इन्द्र और विरोचन की कथा

छान्दोग्य उपनिषद् के प्रपाठक ८ के ७-१३ खण्डों में प्रजापति और इन्द्र तथा विरोचन का संवाद दर्शाया गया है। देवों में से इन्द्र और असुरों में से विरोचन ब्रह्मविद्या सम्बन्धी उपदेश की प्राप्ति के लिये प्रजापति के पास पहुँचे। यह संवाद निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है।

प्रजापति ने कहा कि जो आत्मा पाप रहित, जरावस्था से रहित, सत्यकामना वाला और सत्य सङ्कल्प वाला है,—वह खोजने योग्य है, वह जिज्ञासा योग्य है। जो उस आत्मा को खोज कर जानता है वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त हो जाता है ॥१॥

इस उपदेश को देव और असुर दोनों ने विचारा, उन दोनों ने कहा कि हम चाहते हैं कि उस आत्मा का अन्वेषण करें जिसका कि अन्वेषण करके पुरुष सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त हो जाता है। देवों में इन्द्र और असुरों में विलोचन प्रजापति-आचार्य के निकट गये। वे दोनों आपस में बातचीत न करते हुए और हाथ में समिधा लेकर प्रजापति के समीप आये ॥२॥

उन दोनों ने ३२ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के समीप वास किया। तब उन दोनों से प्रजापति ने कहा कि किस इच्छा से तुमने मेरे समीप वास किया है। वे दोनों बोले कि जो आत्मा "पाप रहित" आदि गुणों से युक्त है और जिसकी महिमा आपने ऊपर दर्शाई है उसी आत्मा को जानने की इच्छा से हम दोनों ने आप के समीप निवास किया है ॥३॥

उन दिनों के प्रति प्रजापति ने प्रवचन किया कि जो यह पुरुष आंख में दीखता है यह आत्मा है, यह अमृत है, अभय है, यह ब्रह्म है। प्रश्न किया कि हे भगवन्! जो यह जलों में, और जो यह दर्पणों में दृष्टिगोचर होता है यह कौन सा आत्मा है ? । प्रजापति ने उत्तर दिया कि यह ही आत्मा इन सब में दीख पड़ता है ॥४॥ (खण्ड ७वां समाप्त) ॥

प्रजापति बोले कि जलपात्र में अपने आपको देखकर तुम बताओ कि तुमने आत्मा के सम्बन्ध में और क्या नहीं जाना ? । वे दोनों जलपात्र में देखने लगे। तब उन दोनों से प्रजापति बोले कि इसमें क्या देखते हो। वे दोनों बोले कि हे भगवन्! हम दोनों सिर के बालों से लेकर पैर के नखों तक यह सब ही अपना २ प्रतिरूप

अर्थात् प्रतिबिम्ब देखते हैं ॥२॥

प्रजापति उन दोनों से बोले कि तुम दोनों उत्तम अलङ्कारों को धारण करके, उत्तम वस्त्र वाले तथा सुसज्जित होकर, जलपात्र में देखो । उन दोनों ने उत्तम अलङ्कारों से युक्त होकर, उत्तम वस्त्र धारण कर और सुसज्जित होकर जलपात्र में देखा । उन दोनों से प्रजापति ने पूछा कि क्या कुछ देखते हो ॥३॥

उन दोनों ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! जिस प्रकार ही हम दोनों उत्तम अलंकृत, उत्तम वस्त्रों वाले और सुसज्जित हैं, हे भगवन् ! इसी प्रकार से ये दोनों उत्तम अलंकृत, उत्तम वस्त्र वाले और सुसज्जित हैं । प्रजापति बोले कि यह आत्मा है, यह अमृत है, अभय है, यह ब्रह्म है । इस पर वे दोनों शान्त हृदय होकर चल दिये ।

उन दोनों को जाते देख कर प्रजापति बोले कि आत्मा को बिना पाए और बिना जाने ये दोनों जा रहे हैं । देवों और असुरों में से जो कोई इस आत्मा को इस प्रकार से जानने वाले होंगे वे निश्चय से पराभव को प्राप्त होंगे । विरोचन तो शान्त हृदय होकर असुरों में जा पहुँचा । उन असुरों के प्रति विरोचन ने यह आत्म-तत्त्व कहा कि यह आत्मा अर्थात् शरीर ही महिमा के योग्य है और यह आत्मा अर्थात् शरीर ही सेवा के योग्य है । इस आत्मा अर्थात् शरीर की ही महिमा करता हुआ और इसी की सेवा करता हुआ इस लोक को और उस लोक को—दोनों लोकों को प्राप्त हो जाता है ॥४॥

इसी कारण आजकल भी अदानी, श्रद्धाहीन, यज्ञहीन व्यक्ति को कहते हैं कि यह असुर सम्प्रदाय का है । क्योंकि ऐसा तत्वज्ञान असुर सम्प्रदाय का ही है । इसीलिए असुर लोग मरे हुए शरीर को, भिक्षा में भी मांगे वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित करते हैं । वे ऐसा मानते हैं कि इससे ही उस लोक को हम जीत लेंगे ॥५॥

(खण्ड ८वां समाप्त) ॥

और देवों में बिना पहुंचे ही इन्द्र ने यह भय देख लिया कि जिस प्रकार यह प्रतिबिम्ब इस शरीर के उत्तम अलंकृत होने पर उत्तम अलंकृत हो जाता है, उत्तम वस्त्रों वाला होने पर उत्तम वस्त्र वाला हो जाता है, सुसज्जित हो जाने पर सुसज्जित हो जाता है, इसी प्रकार यह प्रतिबिम्ब इस शरीर के अन्धा होने पर अन्धा हो जाता है, काना हो जाने पर काना, शरीर के कटे-फटे होने पर कटा-फटा हो जाता है । तो पता लगता है इस शरीर के नष्ट हो जाने पर यह प्रतिबिम्ब भी अवश्य नष्ट हो जायगा । इसलिये प्रतिबिम्ब-शरीर को आत्मा मानने में मुझे कुछ भी ग्राह्य वस्तु नहीं प्रतीत होती ॥१॥

वह इन्द्र समिधाएँ हाथ में लेकर फिर प्रजापति के पास आया । उसे प्रजापति ने कहा कि हे इन्द्र ! शान्त हृदय होकर तू तो विरोचन के साथ लौट गया था तो किस इच्छा से तू फिर आया है ? इन्द्र ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! जिस प्रकार यह प्रतिबिम्ब इस शरीर के साधु अलंकृत होने पर साधु अलंकृत हो जाता है, उत्तम वस्त्रों वाला होने पर उत्तम वस्त्रों वाला, सुसज्जित होने पर सुसज्जित हो जाता है, इसी प्रकार यह प्रतिबिम्ब-शरीर शरीर के अन्धा हो जाने पर अन्धा हो जाता है, काना हो जाने पर काना हो जाता है, कटा-फटा हो जाने पर कटा-फटा हो जाता है । इसी प्रकार इस शरीर के नाश होने पर यह प्रतिबिम्ब भी नष्ट हो जायेगा ।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसलिये प्रतिबिम्ब-शरीर को आत्मा मानने में मुझे कुछ भी ग्राह्य वस्तु नहीं प्रतीत होती ॥२॥

प्रजापति ने उत्तर दिया कि हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है। मैं इस सम्बन्ध में तेरे प्रति और फिर व्याख्या करूँगा। ३२ वर्ष और मेरे समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर। इन्द्र ने ३२ वर्ष और ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के समीप वास किया। उस इन्द्र के प्रति प्रजापति ने प्रवचन किया ॥३॥ (खण्ड ९वां समाप्त)

कि जो यह स्वप्न में महिमा को प्राप्त हुआ २ विचरता है यह आत्मा है। यह अमृत है, अभय है, यह ब्रह्म है। वह इन्द्र शान्त हृदय होकर चला गया। वह अभी देवों तक नहीं पहुँचा था कि उसे यह भय दीखा कि यदि यह शरीर अन्धा हो जाता है तब भी यह तत्त्व अन्धा नहीं हो जाता, यदि यह शरीर काना हो जाता है तो यह तत्त्व काना नहीं हो जाता। इस प्रकार यह स्वप्नावस्था का तत्त्व इस शरीर के दोष से दूषित नहीं होता ॥१॥

शरीर के वध से इस तत्त्व का वध नहीं होता, इसके काना हो जाने से यह काना नहीं होता। परन्तु तो भी यदि कोई इस शरीर को मारता-पीटता है, या इसे कपड़ों की दृष्टि से नङ्गा सा कर देता है तो यह इसे अप्रिय सा मानता है, रोता सा है। इसलिये इस तत्त्व में भी कोई ग्राह्य वस्तु मुझे प्रतीत नहीं होती। इस पर प्रजापति ने उत्तर दिया कि हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है। तेरे प्रति और फिर व्याख्या करूँगा। ३२ वर्ष और मेरे समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर। इन्द्र ने ३२ वर्ष और ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के समीप वास किया। उस इन्द्र के प्रति प्रजापति ने प्रवचन किया ॥४॥ (खण्ड १०वाँ समाप्त)।

कि जिस अवस्था (सुषुप्ति) में यह तत्त्व सोया हुआ होता है, जब कि इस की शक्तियां अन्दर की ओर संहृत हो जाती हैं, और यह सम्यक् प्रकार शान्तावस्था में स्थित हो जाता है और स्वप्नों को नहीं जान रहा होता, यही आत्मा है—ऐसा प्रजापति ने कहा यह अमृत है, अभय है, यह ब्रह्म है। वह इन्द्र शान्त हृदय वाला होकर चला गया। वह अभी देवों तक नही पहुँचा था कि उसे यह भय दीखा कि यह सुषुप्ति का तत्त्व तो सुषुप्ति में अपने को भी नहीं जान रहा होता कि मैं यह हूँ, और न ही भूतों को जान रहा होता है। यह तो विनाश को ही प्राप्त हो गया होता है ? इसलिये इस तत्त्व में भी मुझे कोई ग्राह्य वस्तु प्रतीत नहीं होती ॥१॥

वह हाथ में समिधा लेकर फिर आया। उसे प्रजापति ने कहा कि हे इन्द्र ! जो तू शान्त हृदय वाला होकर चला गया था तो फिर किस इच्छा से तू यहाँ आया है। इन्द्र ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! सुषुप्ति का यह तत्त्व तो इस सुषुप्ति की अवस्था से अपने आप को भी नहीं जान रहा होता कि मैं यह हूँ, और न ही इन भूतों को जान रहा होता है, यह तो विनाश को ही प्राप्त हो गया होता है। इस तत्त्व से भी मुझे कोई ग्राह्य वस्तु प्रतीत नहीं होती ॥२॥

प्रजापति ने उत्तर दिया कि हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है। मैं इस सम्बन्ध में तेरे प्रति और फिर कहूंगा। इस आत्मज्ञान से भिन्न और कोई सारयोग्य वस्तु नहीं है। तू पांच वर्ष और मेरे समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर। उसने और पांच वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक वास किया। यह सब मिलकर १०१ वर्ष हुए। इसीलिये यह कहते हैं कि इन्द्र ने १०१ वर्षों तक प्रजापति के समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक वास किया। उस इन्द्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के प्रति प्रजापति ने प्रवचन किया ॥३॥ (खण्ड ११वां समाप्त)

कि हे इन्द्र ! यह शरीर निश्चय से मरणधर्मा है, मृत्यु से ग्रास हुआ है। यह शरीर इस अमर और शरीर से रहित आत्मा का निवास स्थान है। आत्मा जब शरीर के साथ होता है तो वह प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त होता है। शरीर के साथ रहते प्रिय और अप्रिय से छुटकारा नहीं होता, और शरीर रहित हुए आत्मा को प्रिय और अप्रिय छूते नहीं ॥१॥

देखो ! वायु अपने स्वाभाविक रूप में शरीर से रहित है। अभ्र अर्थात् मेघ, विद्युत्, गर्जना—ये भी अपने स्वाभाविक रूप में शरीर से रहित हैं। सो ये जैसे उस आकाश के किसी प्रदेश से संघातरूप में उठ कर, सूर्य रूपी परम ज्योति को प्राप्त होकर, फिर अपने २ स्वाभाविक अशरीरी रूप में प्राप्त हो जाते हैं।[1] ॥२॥

इसी प्रकार ही यह सम्यक् प्रकार से शान्तावस्था में स्थित तत्त्व, इस शरीर से (मृत्यु द्वारा) उठ कर, ब्रह्मरूपी परम ज्योति को प्राप्त होकर, अपने असली अशरीरी रूप में प्राप्त हो जाता है। वह उत्तम पुरुष है। वह पहिले उस शरीर में विचरता है खाता हुआ, क्रीड़ा करता हुआ तथा रमण करता हुआ स्त्रियों के साथ, यानों के साथ तथा सम्बन्धियों के साथ और जिसमें वह पैदा हुआ है उसे भी नहीं जानता था कि यह तो शरीर है (और मैं इससे पृथक् हूँ)। शरीरावस्था में यह तत्त्व, प्राणरूप होकर इस शरीर में जुता रहता है जैसे कि जोतने योग्य घोड़ा चलने के साधन में, अर्थात् रथ में, जुता होता है ॥३॥

जब इस आकाश के मार्ग के अनुसार चक्षु विविध पदार्थों पर स्थित होती है तो उस समय जो पुरुष चक्षु के विषयों को देखता है वह चाक्षुषपुरुष है। चक्षु उसका साधन है, क्योंकि देखने के लिये चक्षु होती है। इसी प्रकार जो जानता है कि मैं इसे सूंघ रहा हूं वह आत्मा है। क्योंकि गन्ध को ग्रहण करने के लिये घ्राण है। और जो यह जानता है कि मैं बोल रहा हूँ वह आत्मा है। क्योंकि बोलने के लिये वाणी है। और जो यह जानता है कि मैं सुन रहा हूं वह आत्मा है। क्योंकि सुनने के लिये श्रोत्र है ॥४॥

और जो यह जानता है कि मैं मनन कर रहा हूं वह आत्मा है। मनन करने के लिये मन इसकी दिव्य-चक्षु होती है। सो वह इस दिव्य-चक्षु द्वारा, अर्थात् मन द्वारा, इन कामनाओं या काम्य वस्तुओं का अनुभव करता हुआ रमण करता है ॥५॥

---

(१) वायु स्वभाव से शान्त और निःस्पर्श रूप में आकाश में रहती है। परन्तु यह कभी २ आकाश के किसी प्रदेश से तूफान या मन्दगति के रूप में उठती है तब इसका वह शान्त रूप नहीं रहता है और इसका स्पर्श प्रतीत होने लगता है। परन्तु सूर्य की शक्ति को प्राप्त होकर यह फिर अपने स्वाभाविक रूप में शान्त और निःस्पर्श रूप में, चली जाती है। इसी प्रकार यह जीवात्मा ब्रह्म-रूपी परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने वास्तविक आत्मरूप को प्राप्त हो जाता है। अभ्र का यहां अर्थ वाष्परूप में जल कण हैं जिनमें कि अभी जल बहुमात्रा में नहीं भरा। अभ्र=अ—भृ। इसलिये यह अभ्रावस्था भी अशरीरी है। विद्युत् भी आकाश में सदा रहती है अशरीरावस्था में। परन्तु बादलों में यह शरीर वाली सी हो जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो कामनाएं या काम्य वस्तुएं कि दर्शनीय ब्रह्म के आश्रय में हैं। इस द्रष्टा और अनुभवकर्त्ता को ही देव लोग आत्मा कहते हैं। इस आत्मा से उन देव लोगों सब लोक प्राप्त हुए हैं, और सब कामनाएं प्राप्त हुई हैं। वह भी सब लोकों को और सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है जो उस आत्मा को ढूंढ कर जान लेता है—यह प्रजापति ने उपदेश दिया ॥६॥ (खण्ड १२वां समाप्त)

इस उपदेश से इन्द्र आत्मज्ञानी होकर प्रसन्नता पूर्वक कथन करता है कि—मैं श्याम[1] अर्थात् नीले—आकाश की तरह विशुद्ध ब्रह्म से, उसके शबल अर्थात् चितकबरे सांसारिक स्वरूप को प्राप्त हो गया हूं। और उसके शबल अर्थात् चितकबरे सांसारिक रूप से उसके श्याम अर्थात् नीले—आकाश की तरह विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो गया हूँ। अश्व जैसे अपने रोमों को कम्पा कर धूल को अलग कर देता है, या चन्द्र जैसे राहु के मुख से छूट कर विशुद्ध निर्मल रूप में हो जाता है, इसी प्रकार मैं भी शरीर को झाड़ कर और पाप से विमुक्त हो कर कृतार्थ हो गया हूँ, और मैंने नित्य दर्शनीय-ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है, ॥१॥ (खण्ड १३वां समाप्त)

१। वह दूर दीखने वाला नीला आकाश सदा स्वच्छ है, विशुद्ध है और निर्मल है। ब्रह्म भी, जो कि त्रिपाद् रूप में अपने अमृत तथा प्रकाशमय स्वरूप में रहता है सदा स्वच्छ है, विशुद्ध है, और निर्मल है। इस रूप वाले ब्रह्म को "श्याम" कहते हैं। परन्तु ब्रह्म का एकपाद विश्व के रूपों का निर्माण करता है। यह ब्रह्म का सांसारिक रूप है। इस रूप को शबल अर्थात् चितकबरा रूप कहते हैं। क्योंकि संसार में नानाविधि नाम-रूप का संमिश्रण है। इस दृष्टि से इसमें व्याप्त ब्रह्म को भी चितकबरा या शबल कहा गया है। आत्मज्ञानी वह है जो ब्रह्म के इन दोनों रूपों को जानता है, उसके व्याकृत और अव्याकृत दोनों रूपों को जानता है। ऐसे आत्मज्ञानी के लिये श्याम-शबल दोनों रूप एक है

—सत्यभूषण 'योगी'

समाश्वासन

मत गा ! दुखद भूत के गान

आज सँभल यह वर्तमान ही कल होवेगा भूत महान।
कब तक तू रोता जावेगा हो चिन्ताओं से हैरान।
बीत गया वह लौट न सकता रोना हँसना एक समान।
बचा-बचा ले कहीं इसे भी लूट न ले जावे शैतान।
नन्हें बच्चे गिरते ही हैं गिर उठ जाते भगना जान।
रोना स्नेहमयी मां का है अविश्वास करना अपमान।
तेजस्वी सम्राट् शुद्ध है तू "योगी" निज को पहिचान।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नमक कर, जंगल कर और न्यायालयों के बहिष्कार की प्रेरणा सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने की थी—

महर्षि के जीवन की कुछ अप्रकाशित घटनायें

—स्व० श्री आचार्य रामदेवजी

卐 卐

उपयोगी और ज्ञानवर्धक यह लेख पाठकों को पसन्द आयेगा क्योंकि आज जिस प्रवाह में हम बह रहे हैं उसमें ऋषि के विचार सफल मार्ग दर्शन कर सकते हैं।

ऋषि किस प्रकार की शिक्षा का प्रचार क्रियात्मक रूप में करना चाहते थे यह बात उनके पत्रों से स्पष्ट हो जाती है। उनकी शिक्षाप्रणाली तो सब आर्य सत्यार्थप्रकाश में पढ़ ही सकते हैं। उदाहरण के लिए लीजिए—

(क) उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को एक पत्र में ऋषि ने लिखा— **"जब कभी राजकार्य से अवकाश मिले तभी व्याकरण आदि शास्त्र, मनुस्मृति के तीसरे अध्याय का अभ्यास कीजिएगा और व्यर्थ समय एक क्षण भी मत गंवाइयेगा। जैसा कि शतरंज हास्य और विनोद आदि में मूर्ख लोग अपना अमूल्य समय खोते हैं—वैसा करना सर्वथा अनुचित है।"**

इस पर कुछ व्यक्ति कह सकते हैं कि यह तो एक राजा को शास्त्र पढ़ने का उपदेश मात्र है। इसलिए एक उद्धरण और दिया जाता है। महाराजाधिराज-जोधपुर नरेश को चिट्ठी लिखते हुए महर्षि लिखते हैं—**'महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रखकर प्रथम देवनागरी भाषा पुनः संस्कृत विद्या जो सनातन आर्ष ग्रन्थ हैं जिनको पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो—इन दोनों को पढ़ पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी में भी जो ग्रामर और फिलोसोफी के ग्रन्थ हैं पढ़ना चाहिए।"**

महर्षि के दिवंगत होने पर परोपकारिणी सभा के २८ दिसम्बर, १८८३ के प्रथम अधिवेशन में महादेव गोविन्द रानाडे ने ऋषि दयानन्द की स्मृति को स्थिर करने के लिए दयानन्द-आश्रम के उद्घाटन का प्रस्ताव पेश किया, उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए परोपकारिणी सभा के उपमन्त्री पं० मोहन लाल विष्णु पाण्डे ने अपील प्रकाशित की थी जिसमें दयानन्द आश्रम का एक उद्देश्य यह बताया गया था कि वेद और वेदांग पढ़ने-पढ़ाने के लिये एक वैदिक पाठशाला नियत की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाय। वेद और वेदांग सुनने और सुनाने के लिए एक व्याख्यान भवन तैयार किया जाए और यह वैदिक पाठशाला ऐसी होवे जिसमें वेद और वेदांग आदि शास्त्र स्वामी जी की प्राचीन प्रणाली से पढ़ाये जायें।"

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महर्षि के उत्तराधिकारियों के ऋषि की शिक्षाप्रणाली को क्रियात्मक-रूप देने के क्या विचार और संकल्प थे।

आर्य्यों के सामने एक समस्या और भी है वह यह है कि यद्यपि महर्षि ने मठाधीशों और गुरुओं के युग में आर्यसमाज में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की और स्वयं न मठाधीश बने और न किसी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया तो भी आर्यसमाज के संगठन में परोपकारिणी सभा एक ऐसी संस्था है जिसके सदस्यों का आर्य्यप्रजा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं हैं, वे चुने नहीं जाते, किन्तु नियत किये जाते हैं और जब तक उनका देहावसान न हो जाय तब तक उनके स्थानापन्न कोई नहीं नियत किये जाते। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास को पढ़ने वाले लोगों को इस बात से आश्चर्य होता है कि जिनका ऋषि के साथ इतना गहरा सम्बन्ध था उन्होंने भी उनके बाद ऐसे संगठन को कैसे जन्म दिया ? किन्तु यह भ्रम भी उनको होता है जो आर्यसमाज के इतिहास से अपरिचित हैं। ऋषि के पत्रों से भी यह बात स्पष्ट है कि वे वैदिकयन्त्रालय के प्रबन्ध में मुख्य-मुख्य समाजों के हाथ को ही चाहते थे, किन्तु अपने जीवन-काल में वे आर्यसमाजों की शक्ति को केन्द्रित करने का काम न कर सके, परन्तु परोपकारिणी के प्रथम अधिवेशन में ऋषि के परम भक्त और अग्रणी शिष्य महादेवगोविन्द रानाडे ने १ निम्न प्रस्ताव पेश किया जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

"सर्व आर्यसमाजों का परस्पर तथा परोपकारिणी सभा से भी व्यवहार बढ़ाने के हेतु आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों की एक सभा निर्माण करनी चाहिए और जब तक यह सभा नहीं बनती तब तक आर्यसमाजों के जो-जो प्रतिनिधि परोपकारिणी सभा में हैं वे ही आर्यसमाजों के प्रतिनिधि माने जावेंगे। जब प्रतिनिधि सभा स्थापित हो जावेगी तब परोपकारिणी सभा में जो-जो सभासद् पद खाली होंगे वे इस प्रतिनिधि सभा के योग्य सभासदों से इस प्रकार पूर्ण किये जावेंगे कि परोपकारिणी सभा के सभासदों में आधे प्रतिनिधि-सभा के लोग होंगे।"

इसके साथ ही एक और प्रस्ताव पास हुआ जिसे पं० श्यामजी कृष्णवर्मा ने रक्खा—**"सभा के इस वृतान्त की एक-एक प्रति सब आर्यसमाजों को भेजी जावे और उनसे प्रार्थना की जावे कि प्रतिनिधि सभा के लिए सभासद् नियत करने से तथा और कोई नवीन कार्य्य हों उससे परोपकारिणी सभा को यथाशक्ति शीघ्र याद करावें।"**

इन उद्धरणों से आर्यसमाजियों की उपर्युक्त समस्या का समाधान हो सकता है।

ऋषि दयानन्द को अब तक बहुत से लोग संकुचित अर्थों में एक धार्मिक संशोधक ही समझते हैं। बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि वे भारत में राजनैतिक विप्लव भी करना चाहते थे। मैंने आर्यसमाजों के नाम एक आवेदन-पत्र भेजा था, जिसमें यह बताया था कि नमक-कर भारत में यदि किसी महापुरुष को सबसे पहिले अखरा तो वह महर्षि थे। जंगलात के कर का प्रतिवाद भी सबसे पहिले ऋषि ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया। स्वराज्य शब्द तथा उसका विचार भी ऋषि के दिमाग की ही उपज थी। सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार करके पंचायती फैसला करने का आदेश तो आर्यसमाज के उपनियमों में भी है। किन्तु आज मैं यह बताना चाहता हूँ कि ऋषि देशी रियासतों को संगठित करके भारत की खोई स्वतन्त्रता को वापस लाने का प्रयत्न कर रहे थे। यह केवल आकस्मिक घटना ही नहीं है कि ऋषि ने सत्यार्थ-प्रकाश उदयपुर में लिखा और परोपकारिणी का प्रधान उदयपुर के महाराणा को बनाया। जिसके वंश ने बड़े कष्ट पाकर भी स्वाधीन भारत के झण्डे को लहराये रक्खा। और भी राजपूताने के राजों-महाराजों को ऋषि शिक्षा देते रहते थे। उस शिक्षा में बहुत से उत्तम सिद्धान्त प्रतीत होते हैं।

(१) एक यह था कि हिन्दू रियासतों के महाराज कुमार देशभक्ति और भारतीय संस्कृति के वायुमण्डल में पलें ताकि वे भारतीय रहें। ऋषि मनोविज्ञान के सिद्धान्त को खूब समझते थे कि संसार पर व्यक्तियों का नहीं पर विचार का शासन है—विचार और भाव ही राष्ट्रीयता के मूल होते हैं। भारतीय वही है कि जिसके भारतीय विचार हों—इस दृष्टि से वे मुसलमानों को भी विदेशी समझते थे, जिस बात को कि आज भी भारत अनुभव कर रहा है।

महर्षि महाराज जोधपुर को एक पत्र में लिखते हैं :—

"आप महाराज कुमार की शिक्षा के लिये किसी मुसलमान व ईसाई को मत रखिए, नहीं तो महाराज कुमार भी इनके दोष सीखेंगे और आपकी सन्तान राजनीति को नहीं सीखेंगे न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी, क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है, वही दृढ़ हो जाता है उसका छूटना दुर्घट है।"

उपर्युक्त उद्धरण से किसी को यह न समझना चाहिए कि ऋषि दयानन्द अपने शिष्य राजाओं को उपदेश देते थे कि वे मुसलमान-प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता या धार्मिक प्रचार का अधिकार न देवें जैसा कि आज भूपाल तथा बहावलपुर रियासत में हिन्दुओं को अपना धर्म फैलाने का अधिकार नहीं है। हाँ, वे यह जरूर चाहते थे कि हिन्दू रियासतों की प्रजा आर्य बनी रहे। किन्तु यह कार्य्य उपदेश से ही करवाना चाहते थे। उनकी प्रजा का यदि कोई हिन्दू मुसलमान व ईसाई बनने पर तुल ही जावे तो ऋषि की यह सम्मति न थी कि उस पर या मुसलमान प्रचारकों पर कोई अत्याचार किया जाय। इस प्रसंग में महाराज उदयपुर को लिखा गया पत्र उद्धृत करना अनुचित न होगा। वह इस प्रकार है :—

"अपने या पराये राज्य में जहाँ तक हो किसी मतवाले की बहकावट से विद्यायुक्ति-विरुद्ध मत में किसी को न फंसने दें। यदि कोई समझने पर भी न माने तो जो कूप में गिरना चाहे तो इसका अभाग्य समझना चाहिए। बुरे बुराई न छोड़ें तो भले भलाई को क्यों छोड़ें।"

(२) देशी राज्यों के सम्बन्ध में ऋषि का दूसरा सिद्धान्त यह था कि रियासतों के राज्य की सीमाओं को ब्रिटिश सरकार बदल न सके। इसके लिए एक तो उनका यह आग्रह था कि पोलिटिकल एजेन्ट के पास जो राज्य का प्रतिनिधि रहे वह पक्का राज्यभक्त हो।

महर्षि महाराज उदयपुर को एक पत्र में लिखते हैं :—

"सरदार या पं० ब्रजनाथ वा अन्य कोई योग्य पुरुषों को सीमा प्रबन्ध करना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

चाहिये। जितनी पृथ्वी स्वराज्य की दूसरे राज्य में दबी है उसके लिए अपील शीघ्र अवश्य होनी चाहिए।"

पाठकों को उपर्युक्त वृत्तान्त पढ़कर क्या एक बार महाराजा दशरथ और महर्षि वशिष्ठ के चरित्रों का स्मरण हुये बिना रह सकता है? महर्षि दयानन्द सचमुच रियासतों के राजाओं को प्राचीन वशिष्ठ ऋषि की भाँति ही उपदेश दिया करते थे।

(३) रियासतों के संगठन के विषय में महर्षि का तीसरा सिद्धान्त यह था कि राजाओं के व्यक्तिगत आचार-व्यवहार अच्छे होने चाहियें।

जोधपुर नरेश को एक पत्र में महर्षि लिखते हैं—"जैसे हड़के हुए कुत्तों के दांत लगने से उसका दोष छूटना अति कठिन है—वैसे वेश्या और खुशामदी लोगों का संघ (संग), मद्यपान, चौपर और कन आदि में व्यर्थ काल खोना राजाओं के लिए महाविघ्नकारक हैं। मुझ बड़ा आश्चर्य है कि आप बड़े बुद्धिमान् और शौर्य्य और गुणयुक्त होकर इनसे पृथक् क्यों नहीं होते?"

आर्य्यकुल-दिवाकर महाराजा उदयपुर को एक पत्र में लिखते हैं—"कवि साहित्य की जो नायिका आदि भ्रष्ट रीति है उसका स्मरण, श्रवण और वैसे मनुष्यों का संघ (संग) कभी मत कीजियेगा। और वैसे गणेशपुरी के मनुष्यों का संघ (संग) न कीजियेगा और न मद्यपान, वेश्या का दर्शन, नृत्यगान आदि प्रसंग करना। जैसी दिनचर्या में लिख आया हूं उससे विपरीत आचरण कभी न करना, किन्तु प्रातः चार बजे उठना और दिन को १०-३० व ११ बजे भोजन करना और दिन में निद्रा न लेनी और रात्रि में १० बजे तक शयन सदा कीजिएगा। सदा ६ घंटे तक समय राजकार्य्य में लगाया कीजियेगा। प्रातः समय योगाभ्यास की रीति से ध्यान करना और नाम लेना आदि पुरोहित के अधीन कीजियेगा जिससे ध्यान करने और राज्य-पालन में समय यथोचित श्रीमानों को मिले और बुद्धि बल, पराक्रम, आयु और प्रताप बढ़ता रहे।'

महर्षि ने क्या मजेदार चुटकी ली है। केवल नामोच्चारण और वृथा जप के बारे में उनकी धारणा क्या थी वह इस उपदेश से स्पष्ट है।

(४) ऋषि का रियासतों के संघटन के विषय में चौथा सिद्धान्त यह था कि कुरीतियों को शक्ति से हटाकर उनके स्थान में अच्छी प्रथायें चलानी चाहिएं, महर्षि म० सज्जनसिंह जी को लिखते हैं कि—"जब दशहरा निकट आए उसमें अनपराधी भैंसे-बकरे न कटें। उनके स्थान में शीरीनी, मिठाई, मोहनभोग लापसी और मिठायी प्रदान कीजिये और क्षत्रियों को कि जो शस्त्र चलाना जानते हैं उनके उत्साह, शौर्य, धैर्य, बल और पराक्रम की परीक्षा के लिए जंगली सुअरों और सिंह को प्रथम पकड़ रखें और उस दिन मैदान में छोड़ शस्त्र-प्रहार करने की आज्ञा दीजिये इनको विदित तो होवे कि शस्त्र चलाना कैसा होता है? अरोग्य और अधिक वर्षा होने लिये वर्ष में १० हजार रुपयों से घृत आदि जिस रीति से होम हुआ था उसी रीति से प्रतिवर्ष होम करिये।"

(५) महर्षि का पाँचवां मुख्य सिद्धान्त यह था कि राजा दोनों की रक्षा करे। महर्षि का दिल भी अन्य परिव्राजक और महात्माओं के समान गरीबों के साथ था। महाराणा उदयपुर को एक पत्र में लिखते हैं "सदा बलवान् और राजपुरुषों से

सताये हुओं की पुकार यदि भोजन पर भी बैठे हों तो भोजन को भी छोड़ कर उन की बात सुननी और यथोचित उनका न्याय करना। ऐसा न हो कि निर्बल अनाथ लोग बलवान् और राजपुरुषों से पीड़ित होकर रुदन करें और उनका अश्रुपात भूमि पर गिरे कि जिससे सर्वनाश हो जावे। और उनकी रक्षा से सब प्रकार की उन्नति अर्थात् शरीरारोग्य, आयुवृद्धि, धनवृद्धि, राजवृद्धि और प्रतापवृद्धि करते रहिए।"

(६) ऋषि का छठा सिद्धान्त यह था कि राजपूतों में वीरता की प्रथा मिटनी न चाहिए। उदयपुर के महाराणा के सम्मुख महर्षि ने निम्न स्कीम रक्खी थी—

"निरामयी महोत्सव में निम्नलिखित कार्य अवश्य कीजियेगा—

(१) वेदमन्त्रों से होम

(२) सवा लाख रुपये से क्षात्रशाला

(३) २५ हजार रुपये स्वराज्य में अनाथ, वृद्ध, विधवा और रोगियों के पालन के लिए १० हजार मेवाड़ में वैदिक धर्म-प्रचार और प्राचीन आर्ष-ग्रन्थों के छपवाने, प्रदान करने के लिए और २ लाख रुपये वहां के सरदारों से लेकर छात्र-शाला स्थापन शीघ्र कीजिएगा। इसमें ऐसा समझिये कि जो एक बार (Governor general) साहब आ गये थे।" विज्ञ पाठक इस उद्धरण में (1) Old age pensions (2) Employment Insurance, (3) Widows'home (4) Home for the sick. के सिद्धान्तों की झलक देख सकते हैं।

(७) महर्षि का सातवां सिद्धान्त यह था कि भारतीय स्वराज्य को स्थिर रखने और उसके क्षेत्र को बढ़ाने का उपाय एक और यह भी है कि भारतीय भारत की प्रजा में जो सामाजिक कुरीतियां हैं वे राजशक्ति से हटा दी जावें। जहाँ ब्रिटिश भारत में शारदा ऐक्ट पास होता है वहां महर्षि अपने शिष्य महाराज को निम्न-लिखित आदेश देते हैं :—जब कि अभी तक न कांग्रेस का नाम था और न सोशल कान्फ्रेंस का) "अपने राज्य में २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की कन्या का विवाह करने के लिये दढ़ता पूर्वक आज्ञा दीजिये। कुमार और कुमारियों का यह समय सनातन आर्ष ग्रन्थस्थ विद्याओं के ग्रहण करने में व्यतीत होवे। जिससे सब मनुष्य-जाति की सत्य उन्नति होवे।"

(२) एक विवाह से अधिक दूसरा विवाह कोई न करने पावे, यह विवाह भी दोनों की प्रसन्नतापूर्वक होवे जिससे अत्युत्तम सन्तान उत्पन्न होवे।" साथ ही साथ ऋषि यह भी समझते थे कि राज्य की आय का बहुत सा भाग कृषकों से मिलता है। अतः कृषकों की रक्षा करना राजा का विशेष कर्त्तव्य है। महाराज को एक पत्र में लिखते हैं—"जैसे राजा और कृषिबल आदि प्रजा सुखी रहे वैसा कर प्रबन्ध प्रजा में करे और उन्हीं कृषिबल आदि को सब सुख का मूल कारण समझ उनसे पितावत् वर्तें।"

(८) ऋषि का आठवां सिद्धान्त यह है कि राजा प्रजा का वेतन-भोगी सेवक है। अतः उसका राजकीय सारी आय पर हक नहीं है। इस विषय में महाराज को निम्न आदेश किया था "सब राजकीय आय में से १।१० धर्म की आय के लिये नियत रखके, जिससे विद्या, धर्म, सुशिक्षा की वृद्धि के लिए अध्यापक और उपदेशक

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रचलित कर आपत्काल में अनाथों की रक्षा भी उसी धन से करें और राज्य के आय के ६ अंशों में से २ भाग स्थिर कोश, दो अंश राजकुल, तीन अंश शिल्प-विद्या की उन्नति में लगावे। अपना व अपने कुटुम्बियों का नित्य नैमित्तक व्यय नियम पूर्वक करे, अधिक नहीं।"

आज जो राजा लोग आधे से ज्यादा आमदनी आप हड़प जाते हैं और जो हमारी सरकार आधे के लगभग के ऊपर खर्च करती है वे ऋषि के इन वाक्यों की ओर ध्यान दें।

(९) स्वामी जी महाराज का नवम सिद्धान्त यह था कि स्वराज्य वृद्धि की ओर कदम उठाने से पूर्व देशी राजाओं को राज्यों में स्वराज्य की स्थापना करनी चाहिये। अर्थात् सच्चा स्वराज्य वह होता है जिसमें राजा की एक सत्ता न हो लेकिन प्रजा के परामर्श से ही सब कार्य्य-व्यवहार चलता हो इस सम्बन्ध में महर्षि ने महाराजा को निम्न आदेश दिया था—

"सब काम धार्मिक सभ्यों के बहुमतानुसार नियत करे और वह आज्ञा जो कि प्रजा के साथ सम्बन्ध रखती हो सब में प्रजा की सम्मति से सिद्ध करके गुण-दोष समझे पश्चात् गुणाढ्य नियमों को नियत और दोष युक्तों का त्याग करे।

राजकार्य एक पर निर्भर न रक्खे किन्तु राजपुरुष और प्रजापुरुष की अनुमति के अनुकूल प्रचलित करे। अपने आत्मा व शरीर को राजा व अधिकारी न समझे किन्तु राजनीति को ही राजा और राज्याधिकारिणी माने। इसे निर्दोष चलाने के लिए एक राजसभा और दूसरी विद्यासभा और तीसरी धर्म सभा नियत करे, इन समाजों में राजपुरुष और प्रजापुरुष नियत रहें। राजपुरुष राजोन्नति और प्रजापुरुष की वृद्धि में प्रयत्न किया करें। और तीनों समाजों के विचारानुकूल नये नियम प्रचलित किये जायं। जो-जो आज्ञा इन सभाओं में निश्चित होकर प्रचलित की जावे उनका उल्लंघन कोई भी न करे। यदि करे तो वह सबका अमाननीय और दण्डनीय हो।"

इस प्रकार कई बातें तो ऋषि ने ऐसी क्रान्तिकारी लिखी हैं जिन्हें पढ़कर लैनिन भी एक बार हिल जाता। सब लोग यह चीख-पुकार कर रहे हैं कि यदि किसी धर्म-संस्था को कोई जागीर मिली हुई हो तो उसे खोंस लेना धर्म में हस्ताक्षेप है और पैतृक सम्पत्ति पर सब सन्तानों को अधिकार है। इस पर ऋषि लिखते हैं। परन्तु धमार्थ आदि के लिए जो दिया हो उसके भोक्ता अन्याय से वर्तते हों तो भी उस अंश को राजअंश में न मिलावे, किन्तु कुकर्मी से छुड़ा योग्य धर्मात्मा को इसका अधिकारी करे। यदि उनके सन्तान पितरों से अधिक योग्य हों तो उनको अयोग्य के अंश में से अधिक अंश देवें। और अधिक प्रतिष्ठा देवें।"

इस प्रकार अन्य अनेक क्रान्तिकारी विचार महर्षि के पत्रों में बिखरे पड़े हैं। पाठक उपर्युक्त विचारों को पढ़कर उनको क्रिया में लाने का प्रयत्न करें।

सत्य धर्म का संदेश
घर-घर में पहुँचाओ !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक प्रश्न ?

क्या मांस मनुष्य का स्वाभाविक आहार है ?

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल, फूल और कन्द आदि है। इस बात को हम यहाँ पर सप्रमाण सिद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि स्वाभाविक भोजन के छोड़ने ही से हम लोग विविध भाँति के रोगों से पीड़ित हो रहे हैं। अभ्यास से मनुष्यों ने अपनी इन्द्रियों की स्वाभाविक शक्ति को ऐसा बिगाड़ डाला है कि जिस वस्तु को देख हमें घृणा होनी चाहिए) उसे ही हम प्रसन्नता पूर्वक खाते हैं। इस विषय में पशु भी हमसे अच्छे हैं। जो पशु घास खाते हैं वे मांस की ओर देखते तक नहीं, और जो मांम खाते हैं वे घास की ओर दृक्पात नहीं करते। इसी प्रकार फल और कन्द आदि के खाने वाले जीव उन पदार्थों को छोड़ कर घासपात नहीं खाते। प्यास लगने पर भी पशु 'सोडावाटर' और मद्य नहीं पीते। परन्तु मनुष्य एक विलक्षण पशु है। वह घास पात; फल-फूल; मांस-मदिरा सभी उदरस्थ कर जाता है। फिर भला; उसका शरीर क्यों न रोगों का घर हो जावे ?

भोजन के अनुसार थल-चर पशुओं के तीन भेद हैं। मांस-भक्षी, वनस्पति-भक्षी और फल-भक्षी। बिल्ली; कुत्ता और सिंह आदि जितने हिंस्र जीव हैं सब मांस भक्षी हैं। उनका स्वाभाविक भोजन मांस ही है। इसलिए उनके दांत लम्बे; नुकीले और दूर-दूर होते हैं। इस प्रकार के दांतों से ये जीव मांस को फाड़ कर निगल जाते हैं। उन के दांतों की रचना से यह स्पष्ट सूचित होता है कि ईश्वर ने उन्हें मांस खाने ही के लिए वैसे दांत दिये हैं। गाय; बैल; घोड़ा; बकरी इत्यादि जीव वनस्पति-भक्षी हैं। इसलिए ईश्वर ने उनके दाँत ऐसे बनाये हैं जिस में उनसे वे घास को सहज ही काट सकें। उनके दांतों की रचना ही उन के वनस्पति-भक्षी होने का प्रमाण है।

मनुष्य के दांत न तो मांस-भक्षी पशुओं से मिलते हैं और न घास-भक्षा ही पशुओं से। उनकी बनावट ठीक वैसी ही है जैसी बन्दर आदि फल-भक्षी जीवों के दाँतों की होती है। अतएव यह बात निर्विवाद है, निर्भ्रान्ति है, निःसंशय है कि ईश्वर ने मनुष्य के दाँत फल खाने के लिए बनाये हैं। परन्तु हम लोग अब उनसे मांस और मछली काटने लगे हैं; बिस्कुट चबाने लगे हैं; आगरे की दालमोठ और लखनऊ की रेवड़ी तोड़ने लगे हैं ! इस पर भी कोई नीरोग होने का दावा कर सकता है ?

मांस-भक्षी जीवों का मेदा छोटा और गोल होता है। उनके शरीर से उनकी अंतड़ियां ३ से लेकर ५ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। वनस्पति-भक्षी पशुओं का मेदा बहुत बड़ा होता है; वे खाते भी अधिक हैं। उनकी अंतड़ियां उनके शरीर से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२० से लेकर २८ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब रहे फल-भक्षी जीव। उनका मेदा मांस-भक्षी जीवों के मेदे से अधिक चौड़ा होता है; और उनकी अंतड़ियां उनके शरीर से १० से लेकर १२ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब इन तीनों प्रकार के जीवों से मनुष्य का मिलान कीजिये। सिर से लेकर रीढ़ की हड्डी के छोर तक मनुष्य की लम्बाई १॥ से २॥ फुट तक होती है। और मनुष्य की आंतड़ियों की लम्बाई १६ से लेकर २८ फुट तक होती है। अर्थात् उनकी लम्बाई शरीर (सिर से लेकर रीढ़ के छोर तक) की लम्बाई से १०-१२ गुना अधिक हुई। यहां भी फल-भक्षी पशुओं से मनुष्य को समता मिली। शरीर के अनुसार मनुष्य की अंतड़ियां फल खाने वाले पशुओं ही की सी निकलीं। अतएव मनुष्य के फल-भक्षी होने का यह दूसरा प्रमाण हुआ।

जिस वस्तु की उसकी स्वाभाविक दशा में, देख कर खाने को जी चाहे वही मनुष्य के खाने योग्य है। उबालने, भूनने और मसाला लगाने से किसी वस्तु की स्वाभाविक अवस्था नहीं बदल सकती। भेड़, बकरे अथवा मछली आदि को देख कर किसका मन उस पर दांत मारने को होता है? कच्चा साग और कच्ची तरकारी खाने की किसे इच्छा नहीं होती है? फिर उनमें चाहे कितना ही घी खर्च करें और चाहें कितना ही माल मसाला लगावें, उनकी आन्तरिक दशा वैसी ही बनी रहेगी, उनमें कदापि अन्तर न होगा। अतएव जिस वस्तु को, उसकी स्वाभाविक अवस्था में देख कर, जी मचलाने लगे अथवा घृणा हो वह वस्तु मनुष्य के खाने योग्य नहीं।

जो वस्तु स्वभाव से जैसी है उसे वैसे ही खाने से वह शीघ्र पच जाती है और शरीर में बल बढ़ाती है। परन्तु हजारों वर्ष से हम लोग अस्वाभाविक भोजन कर रहे हैं, अतएव कच्चे अन्न को उसके स्वाभाविक रूप में हम नहीं चाब सकते। क्योंकि हमारे दांत और हमारा मेदा अशक्त हो गया है। इस लिए जब तक वे बलवान् न हो जावें तब तक अन्न को नरम करके खाना चाहिए। उत्तम यह होगा कि मनुष्य चोकर समेत—बिना छाने हुए—आटे की रोटी खावे। चोकर में एक विशेष प्रकार की पाचक-शक्ति है। अतएव यह न समझना चाहिए कि उससे कोई लाभ नहीं होता। पेट में जाकर चाहे उसका रूप न बदले और वह अपने पहले ही रूप में बाहर आ जाय, तथापि उसका खाना निष्फल नहीं होता। पेट में पहुंच कर वह अपना काम किये बिना रहता ही नहीं।

जैसा ऊपर कहा गया, मनुष्य फल-भक्षी है। खेत, बाग और जङ्गल में होने वाले फल और क्रन्द मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है। इन पदार्थों में से, जिनको देखने, सूंघने अथवा स्वाद लेने से, घृणा हो, जी मचलाने लगे, दुर्गन्ध आवे अथवा कड़ुवे लगें, उनको न खाना चाहिए। कन्द अर्थात् जड़ की अपेक्षा फल खाना अधिक लाभदायक है। कन्द कभी-कभी खाना चाहिए। (चौराई, पालक, मेथी आदि साग मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं। उनको वनस्पति-भक्षी जीवों के लिए छोड़ देना चाहिए।) जो पदार्थ अपने स्वाभाविक रूप में खाये जाने से अच्छे लगते हैं, अथवा उनको, स्वाभाविक रूप में देखकर खाने कों जी चाहता है, वे शीघ्र पच जाते हैं, और वे ही सबसे अधिक बलवर्द्धक होते हैं। (जिनको कूटना, पीसना, उबालना; भूनना, मसाला या नमक लगाना और तेल या सिरके में डालना पड़ता है, उनकी पाचकता जाती रहती है अतएव स्वाभाविक पदार्थों की अपेक्षा वे कम बल-वर्द्धक होते हैं।) जिन पदार्थों की उनके स्वाभाविक रूप में देख कर घृणा हो अथवा जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितैताभिस्तु पञ्चभिः।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोपतुष्टये॥

दही, घी, दूध, मधु, (शहद) और मिश्री—इन पांचों का मधुपर्क बनता है जो सब देवों को तुष्ट करने वाला है।[९५]

ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता, (स्मृति—सन्दर्भ, चतुर्थभाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४३०, प्रकाशक—मनसुखराय मोर, नं० ५ क्लाइव रो, कलकत्ता), अष्टम अध्याय, श्लोक संख्या २०२।

कांस्यपात्रे समायुक्तं दधिमधुघृतैर्युतम्।
मधुपर्कः स विज्ञेयो मित्रस्य त्वा प्रतीक्षणो॥

दधि, मधु और घृत से युक्त कांस्यपात्र में बना हुआ पदार्थ 'मधुपर्क' कहा जाता है।[९६]

'कौशिक सूत्र० (९२) ने ९ प्रकार के मिश्रण की चर्चा की है—ब्राह्म (मधु एवं दही) ऐन्द्र (पायसका), सौम्य (दही एवं घृत) पौष्ण (घृत एवं मट्ठा)सारस्वत (दूध एवं घृत) मौसल (आसव एवं घृत, इनका प्रयोग केवल सौत्रामणी एवं राजसूय यज्ञों में होता है)' वारुण (तिल का तेल एवं घृत), पारिव्राजक (तिल तेल एवं खली)।[९७]

पं० सुब्रह्मण्यजी लिखते हैं :—

"ततः कांस्यपात्रे दधिमधुघृतं संसृज्य, संस्थाप्य, वर्षीयसा कांस्यपात्रेणापिधाय दद्यात्। ततोऽर्चकः पूर्वोक्तमधुपर्कपात्रं गृहीत्वा मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति वदेत्।"[९८]

श्री शुकदेव वर्मा कृत अनुवाद :—"पूजक एक कांस्यपात्र में रखे हुए दही मधु और घी को दूसरे कांस्यपात्र से ढांककर 'मधुपर्को०' वाक्य को पढ़ता हुआ पूज्य को दे देवे।"

इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह कहना उचित है कि 'मधुपर्क' निरामिष होता है।

पूर्वपक्ष—मधुपर्क में मांस नहीं पड़ता है। कुछ स्थलों में 'मधुपर्क' में 'मांस' की चर्चा है :—

---

९५. वही, पृष्ठ ९५

९६. वही, पृष्ठ ९५

९७. डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे एम० ए० एल० एल० एम० कृत 'धर्मशास्त्र का इतिहास' [प्रथम भाग] पृष्ठ ३१० [हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

९८. 'गोभिलीयगृह्यकर्म प्रकाशिका' पृष्ठ ४७८ [सन् १९३२ ई० में, प्रथमावृत्ति].

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(क) **"नामांसो मधुपर्को भवति भवति"—**

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२६)

(ख) **"नत्त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्"—** (पारस्करगृह्यसूत्र १।३:२९)

लेकिन मधुपर्क तो बिना मांस ही नहीं होता है।

(ग) **"मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।**
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥" (मनुस्मृति ५।४१)

"मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए [अन्य किसी कार्य में नहीं], ऐसा मनु ने कहा है।"

समीक्षा—

(क) वेदों में कहीं भी मांस-भक्षण का विधान नहीं है। अतः वेदों के सामने गृह्यसूत्र प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। मधुपर्क, यज्ञ या किसी भी कार्य में पशु-वध करना महान् पाप है।

'नामांसो मधुपर्को भवति" 'नामांसो' शब्द का सन्धि-विच्छेद 'ना आमांसो' भी होता है। इस प्रकार सन्धि-विच्छेद करने पर 'आमांसो' में 'आ' का प्रयोग 'अमरकोष' ३।३।२३९ के अनुसार निम्न अर्थों में ही हो सकता है—

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे। (औरकोश ३।३।२३९)

इसका पदच्छेद—आङ् ईषत् अर्थे अभिव्याप्तौ सीमा—अर्थे धातुयोगजे। अर्थात्—'आ' का प्रयोग 'थोड़ा' अर्थ में, अभिव्याप्त (व्यापक होना) अर्थ में, 'सीमा' अर्थ में और 'धातुयोग' में होता है। 'नामांसो मधुपर्को भवति' में 'आमांसो' का अर्थ 'मांस से व्याप्त' होगा और उसका तात्पर्य 'मांस सहित' ही बनता है। पूरे सूत्र का अर्थ होगा—'मधुपर्को आमांसो न भवति—मधुपर्क आमांसो' (मांस से व्याप्त–मांस सहित नहीं होता, अर्थात् 'मधुपर्क मांसरहित होता है।'[६६]

पौराणिकों के विचार—

पं० दीनानाथजी शास्त्री लिखते हैं :—यह भी बात ठीक मालूम नहीं होती, मधुपर्क में दधि, घृत, मधु वा चीनी यह मीठी वस्तुएँ होती हैं, यहाँ गोमांस का काम भी क्या? यह मधुपर्क वर की पूजा होती है। जब वह मधुपर्क ही सारा नहीं खाता; तो एक समूची गाय ही कैसे निगल लेगा? यह तो फिर 'चर्मतन्तो-महिषीं हन्ति' चमड़े की तन्तु के लिए समूची भैंस को मारना होगा, १००-२०० आदमियों का भक्ष्य एक वर कैसे खावेगा? और यह भी सुना जाता है कि मांस की वस्तुएँ नमकीन ही बनती हैं, तो मधुपेय के समय नमक वा मांस का काम ही क्या?

'समांसोर्घ्' का हमारे विचार में 'मधुपर्क-रूप अर्थ समांस हो' का भाव मधुपर्क की मांसलता से है अर्थात् उस समय के दधि, मधु, नवनीत वा घृत मांसल (पौष्टिक) हों, निस्सार न हों, सपरेटे के दूध के न हों; शहद भी बनावटी चीनी

६६. **'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ १०८।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदि का न हो। गृहस्थाश्रम में सारसहित (पौष्टिक) दधि, मधु, घृत का सेवन वर को करना चाहिए।'[१००]

पं० माधवाचार्य शास्त्री :—

"...वानप्रस्थ और संन्यस्त व्यक्तियों को केवल मधुपर्क और अन्य मान्य अतिथियों को धारोष्ण पायस, खीर, सिखरन आदि पदार्थों सहित ही मधुपर्क दिया जाना चाहिए यह शास्त्राज्ञा है। तदनुसार यहाँ भी गृहस्थ वशिष्ठजी को धारोष्ण दुग्धसहित मधुपर्क प्रदान किया गया है और तृतीयाश्रमी जनकजी को केवल मधुपर्क मात्र दिया गया है यही उक्त प्रसंग के 'समांस' मधुपर्क दिए जाने का तात्पर्य है।[१०१]

(ख) पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रमाण पर विचार :

मधुपर्क ग्रहण कर लेने के पश्चात् गौ का प्रसंग इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि मधुपर्क में गोमांस की कोई संभावना नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र १-३-२५ से २९ तक ५ सूत्र प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। ये वाममार्गियों द्वारा मिश्रग हैं, क्योंकि मधुपर्क हो चुका, खा भी चुके, आगे गौ की प्रशंसा है कि यह गौ रुद्रों की माता है—वसुओं की पुत्री है और आदित्यों की वहिन है अमृत की नाभि है। यह ऋग्वेद का मंत्र है जिसमें गोहत्या का सर्वथा ही निषेध है। गौ की प्रशंसा है।

जब अर्घ्य पूजनीय राजादि ही निषेधकर्ता है, फिर भी यह कर्म करना आज्ञा-भंग पाप भी है।

कर्काचार्य, जयराम, हरिहर, भाष्यकार मधुपर्क में मांस मानते हैं पर कलि में निषेध मानते हैं।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री, त्रयोदशतीर्थ, एम० ए०, पी० एच० डी० भूतपूर्व अध्यक्ष दयानन्द कालेज, कानपुर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"टि० (१) पारस्करगृह्यसूत्र के अनेक व्याख्याकारों ने यहाँ मांसयुक्त मधुपर्क का विधान माना है किन्तु पराशर और याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित निषेध वाक्यों से कलियुग में उसको वर्जित ही माना है।

निषेधवाक्य—

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतु । ।। याज्ञवल्क्य ।। (हरिहरभा०)

× × ×

यज्ञाधानं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ।।

।। पराशर ।। (गदाधर टी०)

---

१००. 'श्रीसनातनधर्मालोक (६), प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४३-४४४

१०१. मासिक पत्र 'लोकालोक' दिल्ली का 'शंका समाधानांक' वर्ष ४ पौष २०२१ अंक ११, पृष्ठ ३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतः उक्त व्याख्या ही आचारानुकूल है और यही गोदान विधि है।[१०२]

पारस्कर गृह्यसूत्र १-३-५ के भाष्य में कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ, "दहि, घृत और शहद मिला हुआ मधुपर्क कांस्य के पात्र से ढका हुआ लावे" ऐसा कहते हैं।[१०३]

श्री शुकदेव वर्मा चौहान का भाषाभाष्य :—

'कांस्य के पात्र में दही सहत या गुड़ और घृत कांस्पयात्र से ढककर क्रमशः पूर्व पूर्व इन सब पदार्थों को रखे।[१०४]

जब सभी भाष्यकार मधुपर्क को मांसरहित मानते हैं तो पुनः उसी गृह्यसूत्र में मांसयुक्त मधुपर्क का बतलाना 'वदतो व्याघात' दोषयुक्त है। इससे तो पता चलता है कि 'पारस्कर गृ० सू० १-३-२९' प्रक्षिप्त है, क्योंकि एक ही लेखक परस्पर विरुद्ध बातें नहीं लिख सकता।

यदि 'दुर्जनतोषन्याय' से उसे प्रक्षिप्त न भी माना जाय तो उसका अर्थ यों हो सकता है :—

'पारस्कर गृह्यसूत्र के २९ वें सूत्र 'नत्वेवामांसोऽर्घ्यः स्यात्' का अर्थ भी 'नामांसो मधुपर्को भवति' की तरह दो प्रकार है—

(१) न तु एव अमांसो अर्घ्यः स्यात्

(२) न तु एव आमांसो अर्घ्यः स्यात्

पहले का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) अमांसः (मांसरहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। दूसरे अर्थ का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) आमांस (मांससहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। इन दोनों अर्थों की संगति तथा असंगतिका विवेचन तथा 'मांस का अर्थ गूदेदार फल का विवेचन आश्वलायन गृह्यसूत्र के अन्तर्गत हो चुका है।'[१०५]

मनुस्मृति ५।४१ पर विचार :—

मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही विद्वान् अपनी लेखनी से लिखकर उसके विरुद्ध उसी पुस्तक में लिखते हैं तो उसे कौन उसकी कृति मानेगा ?

---

१०२. 'पारस्कर गृह्यसूत्र' (हरिहर भाष्य हिन्दी व्याख्यासहित) प्रथमकाण्ड, पृष्ठ २५ (अगस्त सन् १९७० ई० में भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौड़ीगली, वाराणसी द्वारा प्रकाशित)

१०३. द्रष्टव्य 'पारस्कर गृह्यसूत्रम् (श्रीकर्कोपाध्याय, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ–प्रणीतम् भाष्यसमलंकृतम्) [सन् १९१७ ई० में गुजराती मुद्रणालय, बम्बई द्वारा मुद्रित प्रकाशित]

१०४. 'पारस्करगृह्यसूत्रम्' पृष्ठ २१ [सन् १९१४ ई० में तारा यन्त्रालय, वाराणसी में मुद्रित]

१०५. 'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ ११३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ११९-१२० में 'मधुपर्क' शब्द आया है। पं० कुल्लूक भट्ट इनके भाष्य में मांसयुक्त मधुपर्क नहीं लिखते हैं, परन्तु राजा राजेन्द्रलालमित्र प्रभृति को इसमें भी 'गोमांससहित मधुपर्क' अर्थ दिखाई देता है जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

पुनः—

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥ ५-४१॥

'मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए और कहीं नहीं ऐसा मनु ने कहा है।'

इसके अन्तिम वाक्यांश 'इत्यब्रवीन्मनु :—इति अब्रवीत् मनु :—ऐसा मनु ने कहा···इस बात का द्योतक है कि ये वचन 'मनुस्मृति' के नहीं हैं। मनुस्मृति में दिये गए सभी विधान राजर्षि मनुजी के हैं, उसमें यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि यह मनु ने कहा है। और किसी ग्रन्थ में मनु के विधान का उदाहरण दिया जाय तो वहाँ ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसा मनु ने कहा है—मनु जी ने ऐसा विधान दिया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह वचन मनुस्मृति के अन्तर्गत मनु महाराज के द्वारा दिए गए विधान का नहीं है।

इसी ५ वें अध्याय के श्लोक ४५ से ५५ तक में मांसभक्षण का निषेध है। पुनः इसी अध्याय में विधान कैसे ?

सामवेद भाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी 'मनुस्मृति भाषानुवाद' में लिखते हैं :—

'२६ से ४२ तक १७ श्लोक निकालकर २५ वें से ४३ वें को मिलाकर पढ़िये तो प्रकरण ठीक मिल जाता है और इस मांस की विधि को मनु में मिलाने वाले ने ऐसी अधिकता से मिलाया है कि एक ही बात (श्राद्धादि न करके मांस न खावे) अनेक बार पिष्टपेषण करता ही जाता है। यह मांस भक्षण किसी कर्म में मनु का सम्मत नहीं है, इसका निषेध मनु ने स्वयं इसी अध्याय के ४३ वें से ५५ वें तक १३ श्लोकों में बड़े बलपूर्वक किया है और ब्यौरेवार इसकी बुराई घिनौनापन दूषितता एवं पातता सब बतलाई है वे बुराइयें यज्ञ में कैसे हो सकती हैं। मनु जब मांस को राक्षसादि का भोजन मानते हैं, तो देवकार्य में कैसे ग्राह्य हो सकता है। ये श्लोक अवश्य प्रक्षिप्त हैं जैसा कि महाभारत, मोक्ष धर्मपर्व में कहा है कि—

सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः॥

धर्मात्मा मनु ने सब कर्म (वैश्वदेवादि) में अहिंसा ही कही थी परन्तु अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इच्छा से शास्त्राबाह्य यज्ञ वेदी पर लोग पशुओं को मारते हैं।"[१०६]

अतः 'मधुपर्क' में माँस नहीं डाला जाता ।

क्या 'उत्तररामचरित' नाटक में बछिया के वध की चर्चा है ?

पृष्ठ ५५-५६:—"…वैदिक कर्मकाण्ड के महाविद्वान् कुमारिल भट्ट के शिष्य महाकवि भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तररामचरित' के चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में लिखा है कि भगवान् (?) वाल्मीकि के आश्रम में भगवान् (?) वसिष्ठ पहुँचे तो दो वर्ष की गाय को कत्ल करके उनका सत्कार किया गया…।"

समीक्षा—वेदों के सामने नाटक का प्रमाण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, वाल्मीकीय रामायण से कई भिन्न कथाओं का वर्णन इस 'उत्तर रामचरित' में है जिसको कोई भी विद्वान् नहीं मानता है।

श्री मोतीलालजी जालान लिखते हैं—"…घटना-प्रसंग कल्पित है। अतः वाल्मीकि ऋषि द्वारा वसिष्ठ ऋषि को गोमांसयुक्त मधुपर्क दिलाना और उनके द्वारा स्वीकार करना भी कल्पित और मिथ्या है। अतः यह सिद्ध हुआ कि 'उत्तर रामचरित' नाटक में चतुर्थ अंक में गोहत्या करवा कर ताजा गोमांसयुक्त मधुपर्क की बात कल्पित और मिथ्या है। ऐतिहासिक सत्य नहीं है।"[१०७]

पं० दीनानाथजी शास्त्री—"…नाटक शास्त्रकोटि में नहीं आ सकता। तब उसका प्रामाण्य भी क्या हो ? इसके अतिरिक्त 'उत्तर रामचरित' में यद्यपि सीता-रामचरित्र हैं; तथापि उसमें वाल्मीकि-रामायण से भिन्न बहुत-सी बातें मन-कल्पित हैं।…

वस्तुतः यहाँ और रहस्य है, गाय का दूध प्रायः अतिथि के कार्य में लग जाने से वह वत्सतरी (बछिया) के लिए नहीं बचा होगा; इसलिए वह बेचारी भूख से बिलबिलाती होगी। यही 'वत्सतरी मड़मडायिता' से संकेत मिलता है सो अतिथ्यर्थ वत्सतरी-विशसन यहाँ भी हो जाता है। श्रीजनक ने क्षत्रिय होनेसे वा वानप्रस्थ होने से मुनि की गाय का दूध आदि स्वीकार नहीं किया; इसलिए वहाँ उसके लिए कहा है—'वत्सतरी विसर्जिता।'[१०८]

अतः आपका यह प्रयास भी व्यर्थ सिद्ध हुआ।

---

१०६. 'मनुस्मृति' पृष्ठ २६५ [गोयलब्रादर्स, थोक पुस्तकालय दरीबाकलां, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित] तुलना करो—मासिक पत्रिका 'तपोभूमि' मथुरा का 'शुद्ध मनुस्मृति अंक' वर्ष १४, जून १९६७ ई० अंक ५-६, पृष्ठ २९०-२९१

१०७ "प्राचीन भारत मे गोमाँस-एक समीक्षा" पृष्ठ १२४-१२५

१०८ "श्री सनातनधर्मालोक (६) पृष्ठ ४४१-४४२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या वाल्मीकि रामायण में मत्स्य, मांस, शराब की चर्चा है?

पृष्ठ ५६:—लेखक ने वा. रा. अयोध्याका० सर्ग ५२।८७; वालकाण्ड १४। ३१,३३,३६, उत्तरकांड ४२।१६-१७; अयो० सर्ग ५६।२३; अरण्यकांड सर्ग ४७।२३; अयो० ९१।५२, से मांस सिद्ध करने का प्रयास किया है।

समीक्षा—पीछे प्रवल पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर दिया गया है कि वेदों में मांस भक्षण की चर्चा नहीं है तब वाल्मीकि रामायण का प्रमाण प्रस्तुत करना मूर्खता है। आर्यसमाजी विद्वान् उन स्थलों को प्रक्षिप्त मानते हैं परन्तु पौराणिक (सनातन धर्मी) विद्वान् उनको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। अतः पौराणिक पंडितों की टीकाओं के आधार पर ही प्रदर्शित किया जाता है कि वाल्मीकि रामायण में मांस की चर्चा नहीं है।

"सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वाँ प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता॥"

—[वा० रा०, अयोध्या का० सर्ग ५२ श्लो०…८७]

भ्रष्ट अर्थः—"हे देवि! मैं अपनी इस नगरी को वापस आकर तुम्हारी शराब के हजारों घड़ों और मांस मिश्रित ओदन से पूजा करूंगी।"

सत्यार्थ :—"(जब भगवान् राम, सीता और लक्ष्मण निषादराज गुह द्वारा प्रदत्त नाव में बैठकर भगवती भागीरथी को पार कर रहे थे तब मध्यधारा में पहुँचने पर महाराणी सीता ने गंगा की प्रार्थना करते हुए कहा—

'देवि! पुनः अयोध्यापुरी को लौटने पर मैं सहस्रों देव दुर्लभ पदार्थों से तथा राजकीय भाग से रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्न के द्वारा आपकी पूजा करूँगी। आप मुझ पर प्रसन्न हो।'

टिप्पणी :—इस श्लोक में आए हुए 'सुराघटसहस्रेण' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सुरेषु देवेषु न घटन्ते तेन सहस्रसंख्याकसुरदुर्लभपदार्थैनेत्यर्थः।' 'मांस भूतौदनेन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए, 'मांसभूतौदनेन मा नास्ति अंशो राजाभगो यस्या सा एव भूः पृथ्वी च उत वस्त्रं च औदनं च एतेषां समाहारः, तेन च त्वां-यक्ष्ये।"

यह टीका गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा अनूदित व प्रकाशित से ली गई है।[१०९]

---

१०९. तुलना करो "पाक्षिक पत्र" "आर्य मार्तण्ड" अजमेर, वर्ष ५१ दिनाङ्क १ मार्च १९७३ ई० अङ्क २५, पृष्ठ १३, "देव दयानन्द की दिव्य देन" शीर्षक से श्री पिण्डी दास ज्ञानी का लेख।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वा० रा० बालकाण्ड सर्ग १४, श्लोक ३१, ३३, ३६ प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि बालकांड में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा अप्रसंग है। महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी ने इसे प्रक्षिप्त माना है।[११०]

"**इमं मा हिंसीरेकशफ पशूं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु**" (यजु० १३।४८)

"इस एक खुर वाले पशु की हिंसा न कर जो कि ह्वेषा शब्द बारम्बार करता और जो वेगवालों में अत्यन्त वेगवाला है।

इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्रा० ७।५।२।३३ में—

"**एकशफो वा एव पशुर्यदश्वः, त मा हिंसीरिति।**"

"एक शफ वाले पशु अर्थात् अश्व की तू हिंसा न कर।

जब वेद में अश्ववध का निषेध है तो कौशल्या द्वारा अश्व का हनन करना अनुचित प्रतीत होता है।

"**मृगं हत्वा ऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण।**"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ५६ श्लो० २३)

भ्रष्ट अर्थ :—राम ने मृगमांस मंगवाकर पर्णकुटी की पूजा की और वह मृग लक्ष्मण के हाथों मरवाया गया।"

सत्यार्थ :—" 'मृग' नाम यहाँ गजकन्द का है। 'मदनपाल निघण्टु' में कहा है—(मृगः पशौ कुरंगे गजि च' इति शब्दस्तोम) इस स्थान पर 'कन्द' का लोप हो जाता हैं (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः—महाभाष्य) तात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्द को उखाड़ कर शीघ्र ले आओ। यहाँ 'क्षिप्र' पद पर ध्यान दीजिए। क्या वहाँ मृग वध होने के लिए खड़े थे जो मार कर शीघ्र ला दिए जाते। 'शुभेक्षण' सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्री लक्ष्मण के गजकन्द पहचानने के चातुर्य को लक्ष्य में रख कर किया गया है। भगवान् बार बार कहते हैं कि 'कर्त्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिधर्ममनुस्मर' उस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ धर्म का पालन कर रहे हैं। शास्त्रों में वानप्रस्थी के लिए केवल कन्द-मूल-फलों के ही खाने की आज्ञा दी गई है। इसलिए भगवती सीता का रावण को फल-भिक्षा ही देने का वर्णन है।"[१११]

"**आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्।**
कन्दमूल फलं पुष्पं यच्चान्यत् मधुरं प्रियम्॥"

—(वा० रा० अरण्यकाण्ड, सर्ग ४७ श्लो० २३)

---

११०. "वाल्मीकीय रामायणार्य टीका" द्वितीय भाग की भूमिका पृष्ठ २८, २९, ३० (सन् १९१२ ई० में बाम्बे यन्त्रालय, लाहौर में मुद्रित)

१११. मासिक पत्र "कल्याण" गोरखपुर का "श्रीरामायणाङ्क" वर्ष ५, जुलाई १९३० ई०, संख्या १, खण्ड १, पृष्ठ १३९ "विद्यावाचस्पति पं० बालचन्द जी शास्त्री का "श्रीरामायण में मांसाहार" शीर्षक लेख।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिथ्यार्थ :—(सीता रावण से कहती है), "अभी मेरा पति बहुत से काले मृगों, गोहों और सूअरों का मांस लेकर आ जाएगा।"

सत्यार्थ—बाल ब्रह्मचारी पं० अखिलानन्द जी :—"मेरे पतिदेव वन में होने वाले कन्द, मूल, फल, पुष्प तथा अन्य स्वादु पुष्कल सामग्री को लेकर आवेंगे।"[११२]

"रूरून् गोधान् वराहांश्च हत्वा ऽऽदायामिषान् बहून्" यह श्लोक प्रक्षिप्त है क्योंकि इसे **साहित्य वाचस्पति चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद शर्मा** ने ब्राइकेट में देकर अर्थ किया है।[११३]

किसी मांस प्रिय व्यक्ति ने "कन्दमूल फलं पुष्पं यच्चान्यत् मधुरं प्रियम्" श्लोक को हटा कर "रूरून् गोधान् वराहांश्च हत्वा ऽऽदायामिषान् बहून्" मिला दिया है।

"सुराः सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः।
मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यावदिच्छथ॥"

—(अयोध्या काण्ड सर्ग ९१ श्लो०५२)

मिथ्यार्थ : "भरत के साथ आये अयोध्यावासियों का सत्कार करते हुए ऋषि भरद्वाज ने शराबियों के लिए शराब और मांस खाने वालों के लिए अच्छे-अच्छे मांस जुटाये।"

सत्यार्थ :—"वे भरत के सैनिकों को पुकार-पुकार कर कहती थी मधु का पान करने वाले लोगो! (सुरापाः) लो यह मधु का पान करो। (सुरां पिबत) तुम में से जिन्हें भूख लगी हो, वह खीर (पायस) खाओ और परम पवित्र फलों के गूदे (मांसानि च सुमेध्यानि) भी प्रस्तुत हैं, इनका आस्वादन करो। जिसकी जो इच्छा हो भोजन करो।"[११४]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर को भी यह अर्थ खटका, क्योंकि वे लिखते हैं :—

"......इस भोजन का वर्णन बड़ा सन्देह करने योग्य है।

इस भोजन में शराबियों के लिए मद्य तैयार था, पायस पीने वालों में लिए पायस था, मांस खाने वालों के लिए मांस था, एक-एक के लिए सात-सात स्त्रियाँ शरीर पर तेल लगाने के लिए थीं (अयोध्या ९१।५१-५४) यह **वर्णन आश्रम-जीवन**

---

११२. मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वर्ष १५, अङ्क ३ पृष्ठ ६७८।

११३. "श्री मद्वाल्मीकि रामायण" (हिन्दीभाषानुवाद सहित) अरण्यकाण्ड-४, पृष्ठ ३६३-३६४ (सन् १९५० ई०, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद)

११४. यह अर्थ गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा अनुवादित वाल्मीकि रामायण में है, तुलना करो पाक्षिक पत्र "आर्य मार्तण्ड" अजमेर, वर्ष ५१, अप्रैल १ सन् १९७३ ई०, अङ्क २६, पृष्ठ ९।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के साथ सजने वाला नहीं हैं। यहाँ बकरों और सूअरों के भी मांस परोसे थे (६७) मिट्टी के खप्पर पर भूने मांस भी थे। (७०) **ये सब वर्णन मुनिभोजन के साथ तथा आश्रमजीवन के साथ मिलने-जुलने वाले नहीं हैं।**"[११५]

पृष्ठ ५६ :—"इसी रामायण के उत्तरकाण्ड, सर्ग ४२ से पता चलता है कि 'सीता को रामचन्द्र ने अपने हाथों गुड़ और घी के फूलों से बनी शराब पिलाई (१८-१९)' तब सेवक राम के खाने के लिए तरह-तरह के मांस और मिष्टान्न ले आए (१९-२०)।"

समीक्षा :—उत्तरकाण्ड को विद्वान् वाल्मीकि ऋषि कृत नहीं मानते हैं। वे युद्धकाण्ड तक ही मानते हैं। अतः यह प्रक्षिप्त है, क्योंकि वनगमन के समय महाराजा दशरथ और महारानी कैकेयी के प्रति भगवान् रामचन्द्र जी क्या कहते हैं :—

"चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।"

—(वा० रा० अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लो० २९)

अर्थ : मैं राज्यभोग्योचित *वस्तुओं को छोड़कर मुनियों के समान मधु, कन्द, मूल एवं फलों से जीवन निर्वाह करता हुआ निर्जन वन में १४ वर्ष तक वास करूँगा।"

और भी कहा है—

"फलानि मूलानि च भक्षयन् वने
गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः॥"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ३४ श्लो० ५९)

---

११५. श्री वाल्मीकि प्रणीत श्रीरामायण महाकाव्य (तृतीय भाग) अयोध्या काण्ड, (उत्तरार्ध), (हिन्दी अनुवाद तथा निरीक्षण" पृष्ठ ३५० (सन् १९४६ ई० प्रथम संस्करण औंध)

*'आमिषम्' का तात्पर्य 'राजभोग्योचित पदार्थों' से है। 'मेदिनीकोष'में 'आमिषम्' का अर्थ 'राजभोग्यवस्तु' भी दिया है—"आकर्षणे ऽपि पुंसि स्यादामिषं पुंनपुंसकम्। भोग्य वस्तुनि संभोगे ऽप्युत्कोचे पलले ऽपि च। 'रामचन्द्र टीकाकार ने भी इसका यही अर्थ किया है। पूर्वापर विचार करने पर भी यहाँ 'आमिषम्' का अर्थ मांस करना उचित नहीं प्रतीत होता। पूर्ण प्रकरण (सर्ग १२) में जहाँ राम के लिए भोजन के पदार्थों का वर्णन आया है, वहाँ मांस का वर्णन नहीं किया गया। मांस अर्थ करने पर इससे उसका विरोध होगा।" (मासिक पत्रिका 'वेदवाणी' वर्ष १२, अङ्क ८, पृष्ठ २६०)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ : "नाना प्रकार के विचित्र वृक्षों से सुशोभित वन में प्रवेश करके वहाँ फल-मूल खाता हुआ तथा पर्वतों, नदियों एवं तालाबों को देखता हुआ मैं सुखपूर्वक रहूँगा। आप प्रसन्न एवं सुखी होवें।"

पुनः मुनि भरद्वाज जी के प्रति भी भगवान् ने इसी वाक्य को कहा—

"धर्ममेव चरिष्यामः पत्रमूलफलाशनाः।"

—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४ श्लो० १६)

अर्थ : "पत्र, मूल, फल आदि खाते हुए धर्म का ही आचरण करेंगे।

सीता जी भी वन जाने के लिए श्री रामचन्द्र जी से प्रार्थना करते हुए कहती हैं :—

"फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः।"

—(वा० रा० अयो० सर्ग २७ श्लो० १५)

अर्थ : 'नित्य फल-मूल खाती हुई मैं (आपके साथ) रहूँगी, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं।"

श्रीराम जी ने निषादराज से कहा था :—

"कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं च माम्।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्॥"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ५० श्लो० ४४)

अर्थ : "कुश-चीर-अजिन (मृगछाला) का धारण करने वाला तथा फल-मूल आदि भोजन करने वाला मुझे समझें। इस समय मैं वनवासी तपस्वियों के धर्म में दीक्षित हो रहा हूँ।"

वन को चलते समय श्री लक्ष्मणजी ने अपनी उपयोगिता बनाते हुए कहा था—

"आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि फलानि च।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहाराणि तपस्विनाम्।"

—(अयोध्या काण्ड, सर्ग ३१, श्लो० २६)

अर्थ : मैं नित्य आपके लिए मूल-फल, तथा अन्य जो तपस्वियों के लिए श्रेष्ठ आहार के योग्य वन की वस्तुएँ हैं, वे सब लाया करूँगा।"

"न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैवं मधु सेवते।"

—(वा० रा० सुन्दर काण्ड, सर्ग ३६, श्लो० ४१)

अर्थ : ("हनुमान् जी सीता जी से कहते हैं) राम न मांस खाते हैं और न मद्य पीते हैं।"

अतः इन प्रमाणों से उत्तरकाण्ड के श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहे है। 'वाल्मीकि रामायण' से भी लेखक द्वारा मांसाहार सिद्ध करना व्यर्थ हो गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुस्मृति और मांसाहार :

पृष्ठ ५६, ५७, ५८, :—"मनु० १०।१०५, १०।१०६, १०।१०७, ५।५६, ५।३२, ५।३५, ५।३९-४०, ५।२६, ५।१८, ३।२६८, ३।२६९, ७०, ७१ में मांसाहार का वर्णन है।

समीक्षा : वर्तमान मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही लेखक अपने ग्रन्थ में परस्पर विरोधी बातें नहीं लिख सकता। अतः मनुस्मृति का सारा मांस-प्रकरण प्रक्षिप्त है। पौराणिक होते हुए भी व्याकरण-साहित्याचार्य, साहित्यरत्न—**पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री** अपनी "मनुस्मृतिः सविमर्श 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका सहिता पृष्ठ ३१-३२ (सन् १९५६ ई० द्वितीय संस्करण, चौखम्बा, वाराणसी) में १७५ श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हैं। मनुस्मृति के केवल एक श्लोक से ही सम्पूर्ण मांस प्रकरण प्रक्षिप्त हो जाता है—

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकः ॥"

—(मनु० ५।५१)

उक्त पं० जी कृत टीका : "अनुमति देने वाला, शस्त्र से मरे हुए जीव के अंगो को टुकड़े-टुकड़े करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला; (जीव वध में) ये सभी घातक (हिंसक) होते हैं।

विमर्श : अनुमन्ता—जिसकी अनुमति के विना उस प्राणी का वध नहीं किया जा सकता, वह क्रयविक्रयी—गोविन्द राज ने इसका अर्थ—'खरीदकर बेचने वाला' किया है। किन्तु 'मारने से हन्ता, धन से खरीदने वाला, धन लेने से बेचने वाला और उसमें प्रवृत्ति करने से संस्कार करने वाला—(घातक होते हैं), इस यम वचन में, खरीदने वाले तथा बेचने वाले'—दोनों को पापभागी लिखा है। यह घातक (हिंसक) त्वदोप शास्त्रोक्त विधि से विरुद्ध हिंसा-विषयक है, शास्त्र के विधि-निषेधोभयपदक होते हैं तथा मांस-भक्षक के लिए अन्यत्र प्रायश्चित्त कहा गया है।"

"यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुरा ऽऽ सवम्।
सद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥"

—(मनु० ११।९५)

अर्थ : "मद्य, मांस, सुरा और आसव ये चारों यक्ष, राक्षसों तथा पिशाचों के अन्न (भक्ष्य पदार्थ) हैं, अतएव देवताओं के हविष्य खाने वाले ब्राह्मणों को उनका भोजन (पान) नहीं करना चाहिए।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकारान् विहिंसन्ति वहिर्वेद्यां पशून् नराः।"

—(महाभारत, शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५ श्लो० ५)

पं० राम नारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' : धर्मातमा मनु ने सम्पूर्ण कर्मों में अहिंसा का ही प्रतिपादन किया है। मनुष्य अपनी ही इच्छा से यज्ञ की वाह्य वेदी पर पशुओं का बलिदान करते हैं।"[११६]

महाभारत से भी यह पुष्टि हो रही है कि मनुस्मृति में 'अहिंसा' की चर्चा है और यज्ञ में पशु-बलिदान भी धर्मशास्त्र के विरुद्ध है।

अतः मनुस्मृति से मांसाहार सिद्ध करना वृथा प्रयास है।

क्या 'महाभारत' में 'गोवध' की चर्चा है ?

पृष्ठ ५६ : "......शान्तिपर्व अ० १४१ में आता है कि विश्वामित्र चाण्डाल के घर से मरे हुए कुत्ते का मांस चुरा कर खा गया।..."

समीक्षा : महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय १४१ में (आपद्धर्म पर्व में) विश्वामित्र और चाण्डाल से संवाद हुआ है। 'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति' मनु के इस कथन के अनुसार भूख से व्यग्र होकर चाण्डाल के गृह में कुत्ते का मांस चुराने गए थे। जब चाण्डाल के समझाने से ऋषि नहीं माने तो वह चुप हो गया। ऋषि कुत्ते का मांस चुराकर तो लाए पर भक्षण नहीं किया यह श्लोक ९४ से स्पष्ट हो जाता है।

अंत में उन्होंने यज्ञ किया तो भारी वर्षा हुई और अन्न उत्पन्न हुए। श्लोक ९८ "विश्वामित्रोऽपि भगवांस्तपसा दग्धकिल्बिष। कालेन महता सिद्धिमवाप परमाद्भुताम्॥" अर्थात्—भगवान् विश्वामित्र भी दीर्घकाल तक **निराहार व्रत** एवं तपस्या करके अपने सारे पाप दग्ध कर चुके थे। अतः उन्हें अत्यन्त अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। श्लोक ९९ से स्पष्ट हो जाता है कि देवों की कृपा से **पवित्र भोजन** प्राप्त करके उसके द्वारा जीवन की रक्षा की।"

अतः लेखक यह बतलावे कि महाभारत में यह कहाँ लिखा है कि विश्वामित्र जी ने कुत्ते का मांस भक्षण किया था। यह वृथा दोषारोपण मात्र है।

पृष्ठ ५७—"महाभारत में भीमसेन के लिए मांस के टोकरे लाने का उल्लेख भी स्पष्ट करता है कि वे लोग भोजन में मांस को भी समाविष्ट करते थे (देखें० महाभा० शल्यपर्व अ० ३० श्लोक २३ और ३४)।

समीक्षा—महाभारत शल्यपर्व के अन्तर्गत गदापर्व के अ० ३० में अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य का सरोवर पर जाकर दुर्योधन से युद्ध करने के लिए बातचीत

११६."महाभारत (पंचम खण्ड) (शान्तिपर्व) (सचित्र, सरल हिन्दी अनुवाद सहित) (गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित) पृष्ठ ५१०५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना है। व्याधों से दुर्योधन का पता पाकर युधिष्ठिर का सेना सहित सरोवर पर जाने का वर्णन है। इसमें भीमसेन द्वारा मांस भक्षण की कहीं चर्चा नहीं है। लेखक को मेरी चुनौती है कि वह मांस भक्षण सम्बन्धी श्लोक प्रस्तुत करे।

वास्तव में दुर्योधन सरोवर में छिप गया था और पाण्डव उसे खोज रहे थे पर पता न चलता था। जिस समय दुर्योधन द्रोणकुमार से वार्तालाप कर रहा था उस समय "तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः। मांसभार परिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥२३॥=वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांस के भार से थके हुए बहुत से व्याध उस स्थान पर पानी पीने के लिए अकस्मात् आ पहुँचे।" (२३)

उन व्याधों ने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्त में होने वाली बातें सुन लीं। और उन्होंने आपस में विचार-विमर्श किया कि यदि हम दुर्योधन का पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। धन के लोभ से वे "एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः। मांसभारानुपादाय प्रययुः शिविरं प्रति (३४)—इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धन की अभिलाषा रखने वाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांस के बोझ उठाकर पाण्डव शिविर की ओर चल दिए (३४)।

भीमसेन के पास जाकर उन्होंने सरोवर के तट जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुनने में आया था, वह सब कह सुनाया (४१) "ततो वृकोदरो राजन् दत्वा तेषां धनं बहु। धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः (४२)=राजन्! तब शत्रुओं को संताप देने वाले भीम ने उन व्याधों को बहुत धन देकर धर्मराज से सारा समाचार कहा।"

न तो इस अध्याय में भीमसेन द्वारा उन मांसों के रखने की और न भक्षण की कहीं चर्चा है। लेखक को दिवास्वप्न हो गया कि पाण्डव मांस खाते हैं। व्याधों का काम है शिकार करना, मांस यत्र-तत्र ले जाना। वे मांसों के साथ जंगल से आ रहे थे और गुप्तचर बनकर धन के लालच से पाण्डवों के शिविर में गए (उस समय अपने शिकार मांस को कहाँ छोड़ देते अतः साथ लेते गए थे। संवाद सुनाकर, धन लेकर वापस चले गए। 'बिल्ली को स्वप्न में जैसे मांस के छिछड़े ही दिखाई देते हैं' उसी प्रकार लेखक मांस शब्द देखकर पाण्डवों पर मांस भक्षण करने का आरोप कर बैठा।

पृष्ठ ५७ : "महाभारत सभापर्व अ० २२ से पता चलता है कि पशुमांस के समान ही उन दिनों नरमांस भी बलि और यज्ञ के लिए प्रयुक्त होता था।..."

समीक्षा : महाभारत, सभापर्व अन्तर्गत जरासंधपर्व अध्याय २२ में जरासंध और श्रीकृष्ण का संवाद और जरासंघ की युद्ध के लिए तैयारी आदि की चर्चा है। जरासंघ आसुरी प्रकृति का राजा था अतः उसके कुविचार को जानकर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं —

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजा राज्ञः कथं साधून् हंस्यान्नृपतिसत्तम।
तद् राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥ ९॥

अर्थ : नृपश्रेष्ठ ! एक राजा दूसरे श्रेष्ठ राजाओं की हत्या कैसे कर सकता है ? तुम राजाओं को कैद करके उन्हें रुद्र देवता को भेंट चढ़ाना चाहते हो ?

अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथत्वया।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः॥ १०॥

अर्थ : वृहद्रथकुमार ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह पाप हम सब लोगों पर लागू होगा; क्योंकि हम धर्म की रक्षा करने में समर्थ और धर्म का पालन करने वाले हैं।

अध्याय २४ श्लोक ७ से ११ तक से पता लगता है कि भीमसेन द्वारा जरासंघ मारा गया। श्लोक १२ से पता लगता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने उन सभी बन्दी राजाओं को छुड़ा दिया।

अतः 'नरवलि' कहाँ हुई ? किस श्लोक से 'नरवलि' का स्वप्न लेखक को हुआ ?

पृष्ठ ५७ : रंतिदेव नामक महादानी और यज्ञकर्ता की रसोई में मांस भोजन बनता था (महाभारत, शान्तिपर्व अ० २९)। उसके यहाँ नित्य दो हजार गौएँ मारी जाती थीं (महाभारत, वनपर्व अ० २०७ श्लोक ९)। शान्तिपर्व अध्याय २९ श्लोक १२७ से पता चलता है कि एक दिन अतिथियों के लिए इसने २,१००० गौएँ मारीं। इतना ही नहीं, इसने गोमेध यज्ञ में इतनी गौएँ मारीं कि उनके रक्त, मांस और चरबी से एक नदी बह निकली जो 'चर्मण्वती' कहलाई। देखें महाभारत, शांतिपर्व अ० २९, श्लोक १२३, मेघदूत के ४५वें श्लोक की मल्लिनाथ की संस्कृत व्याख्या।······मांस से अधिक भक्ष्य भी कोई नहीं है (महाभारत, अनुशासन पर्व अ० ६, श्लोक ७ से १० तक)।······

समीक्षा : राजा रन्तिदेव द्वारा गौएँ मारने व उनके भोजनशाला में मांस भोजन के वर्णन की बात भ्रमपूर्ण है। महाभारत में ऐसी चर्चा नहीं है। सरिता के लेखक जैसा क्षुद्राशय व्यक्ति उन्हें नहीं समझ सकता। लेखक के दिए हुए प्रमाणों पर विचार।

क्या राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनता था ?

महाभारत शान्तिपर्व अ० २९ में कहीं भी राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनने का वर्णन नहीं है। यदि है तो लेखक को श्लोक संख्या देकर अर्थ करना उचित था पर कहीं से सुन सुनाकर लिख दिया है।

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति ससृष्टमणिकुण्डलाः।
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य भोज्यं यथा पुरा।"

—[महाभारत, शान्तिपर्वान्तर्गत राजधर्मानुशासन पर्व, अ० २९ श्लोक १२८]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ : वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किए रसोइये पुकार-पुकार कर कहते थे कि "आप लोग खूब दाल-भात खाइए। आज का भोजन पहले जैसा नहीं है' अर्थात् पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा है।

यहाँ केवल 'दाल-भात' के बनने की चर्चा है।

गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'महाभारत' वनपर्व अ० २०७ श्लोक ६ में कहीं भी दो सहस्र गौवों के वध की चर्चा नहीं है।

राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वैद्विज।
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा।
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा॥

यह प्रमाण राजा राजेन्द्रलाल मित्र की अंग्रेजी पुस्तक "Beef in ancient India" (प्राचीन भारत में गोमांस) नामक पुस्तक की भूमिका के पृष्ठ ३ पर अंकित है।

वास्तव में यह श्लोक 'चित्रशाला संस्करण, पूना के' वन पर्व अ० २०८ में और 'भण्डारकर इन्स्टि्यूट' पूना के संस्करण के वन पर्व अ० १९९ में मिलता है।

सभी संस्करणों में यह श्लोक नहीं है। जिन-जिन संस्करणों में ये श्लोक हैं उनमें आगे की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम।

अर्थात्—हे द्विजश्रेष्ठ! सदा मांस सहित भोजन देने वाले राजा रन्तिदेव की अनुपम कीर्ति हुई।

उपर्युक्त तीनों पंक्तियों का अर्थ '**वध्यते** शब्द का 'मारी जाती थीं' लेकर यह माना जाता है कि राजा रन्तिदेव की रसोई में दो सहस्र पशु और दो सहस्र गायें प्रति दिन मारी जाती थीं।

'वध्येते' का शुद्ध अर्थ : संस्कृत व्याकरण में 'वध' धातु स्वतंत्र नहीं है जिसका अर्थ 'मारना' हो सके, बल्कि मारने के अर्थ में 'हन्' धातु का प्रयोग हुआ है। यह बात महाभाष्य (२-४, ४२-४३) के 'उद्योत्' तथा 'ण्वुल्तृचौ' (३, १, १३३) कृदन्त के 'शब्देन्दुशेखर' में स्पष्ट है। इस 'हन्' धातु के स्थान में 'वध' आदेश होता है। पाणिनि २।४।४२,४३ का सूत्र है—'हनीवधलिङि् लुङि् च।' 'इस सूत्र का अर्थ 'हन्' धातु को 'वध' आदेश होता है 'लिङ् और 'लुङ्' लकारों में। 'लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं—एक विधिलिङ् और दूसरा 'आशिपलिङ्'। दोनों प्रकार के 'लिङ्' में 'वध' आदेश नहीं होता, किन्तु केवल 'आशिपलिङ्' में ही होता है जिसका अर्थ 'आशीर्वाद देना' होता है क्योंकि 'वध' आदेश करने वाले सूत्र के पहले पाणिनि का सूत्र है—"आर्धधातुके (इत्यधिकृत्य)'—इसका अर्थ है कि आर्धधातुक में ही

***जून १९६७ ई० में मनीषा ग्रन्थालय प्रा० लि०, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद प्रचार सप्ताह पर भारी संख्या में मंगाइए !

१—ऋग्वेद ६ मण्डलों का महर्षि दयानन्द
कृत भाष्य। सुनहरी जिल्द मूल्य ३१)
१५ अगस्त तक मूल्य २५)

२—विश्व को वेद का सन्देश
—भारतेन्द्र नाथ साहित्यालंकार
लिखित प्रचार पुस्तक-१०) सैकड़ा

३—वेदों का यथार्थ स्वरूप
पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड द्वारा लिखित
लगभग —४०० पृष्ठ
का अनुपम ग्रन्थ —सजिल्द मूल्य ६)
पर १५ अगस्त तक प्रचार के लिए
केवल ३५०) सैकड़ा

४—गायत्री-शतक
पं० शिवदयालु जी द्वारा
१०१ गायत्री मन्त्रों की सरस
प्रभावपूर्ण व्याख्या—मूल्य १)
पर १५ अगस्त तक ५०) सैकड़ा

५—धर्म का मार्ग
पं० सुरेश चन्द्र वेदालंकार
की रोचक प्रेरक पुस्तक—
मूल्य ५० पैसे
१५ अगस्त तक—३०) सैकड़ा

६ - उपनिषद् कथा माला
महात्मा नारायण स्वामी जी
द्वारा लिखित एक ऐसी
रचना जिसे पढ़कर प्रभु के
समक्ष आप का सिर झुक जाएगा
मूल्य ६० पैसे।
१५ अगस्त तक ४०) सैकड़ा

७—ज्योति-स्तम्भ
आर्य समाज को अपना जीवन
देकर पनपाने वाले आदर्श
१२ महापुरुषों का जीवन चरित्र
प्रत्येक का चित्र आर्ट पेपर पर
मूल्य ३)
१५ अगस्त तक २००) सैकड़ा

८—मां-गायत्री
गायत्री पर महापुरुषों के लेखों
का अनुपम संग्रह —मूल्य ८० पैसे
१५ अगस्त तक ४०) सैकड़ा

९—स्वामी दयानन्द
जीवन-सिद्धान्त-श्रद्धांजलियां—
आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा लिखित
जिस की लाखों प्रतियां आपने घर-घर पहुंचानी है १००) सै०

सत्यार्थ प्रकाश—वेद—और वैदिक साहित्य के प्रचार का संकल्प लेकर वेद प्रचार सप्ताह मनाइए

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी

की अद्भुत लेखनी का अनुपम चमत्कार

दाम्पत्य-सूत्र

अथर्ववेद के चौदहवें कांड का प्रेरक भाष्य

मूल्य ५०) सैकड़ा

पृष्ठ ११०

बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं **शीघ्र मंगाइए**

जन-ज्ञान-प्रकाशन

नई दिल्ली-५

वैवाहिक विज्ञापन

बीस वर्षीया सुन्दर, गौर वर्ण, स्वस्थ, सुशील, शिक्षित एम० ए० गृहकार्यों में पूर्ण कुशल सध्यावन्दनादि करने वाली वैश्य अग्रवाल समृद्ध आर्यपरिवार की कन्या के लिए वैश्य आर्य परिवार का गर्ग तथा जिन्दल भिन्न गोत्रीय योग्य वर चाहिए।

निम्न पते पर पत्र व्यवहार करे। **वेद प्रकाश वेदालंकार**

निकट देव समाज होस्टल अम्बाला शहर

—२१ वर्षीय आर्य कन्या के लिए, आर्य वर चाहिए। कन्या एम० ए० उत्तीर्ण है। दहेज के इच्छुक कृपया पत्र व्यवहार न करें—

—एम० ए० एल० एल० बी० २५ वर्षीय कन्या के लिए योग्य वर की आवश्यकता है। विवाह उत्तम ढंग से होगा।

द्वारा-सम्पादक

जन-ज्ञान (मासिक) नई दिल्ली-५

पुत्रहीन बहनों के लिए

शादी के बाद सन्तान का न होना या होकर मर जाना, गर्भपात होना, बार-बार कन्यायें ही जन्म लेना, आदि दोनों को दूर कर पुत्र उत्पन्न का अचूक इलाज। हजारों पुत्रवती हो चुकी हैं। अब तक किसी को भी निराश नहीं होना पड़ा है। १५) रु० फुलकोर्स ४५) रु० साबित होने पर मूल्य वापस। पता—

श्रीमती रामप्यारी देवी (D) पो० कतरी सराय (गया)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्व श्रेष्ठ : आकर्षक : सस्ता

सत्यार्थ प्रकाश

भारत के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाइए

प्रचार संस्करण—तिरंगा आवरण=२००) सैकड़ा
राज संस्करण—बढ़िया जिल्द =२२५) सैकड़ा
उपहार संस्करण—कपड़े की शानदार आकर्षक जिल्द=३२५) सैकड़ा

५ प्रतियों के आदेश पर भी सैकड़े का भाव दिया जाएगा.

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश

Light of Truth

अनुवादक=बा० दुर्गाप्रसाद जी
भूमिका लेखक=आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

कपड़े की जिल्द=मूल्य १२)
सादी जिल्द=मूल्य १०)

अधिक प्रतियों पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा।

An Introduction to the commentry on the Vedas

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का अंग्रेजी अनुवाद

स्व० बाबू घासीराम जी कृत बढ़िया जिल्द मूल्य ५)

किन्तु १५ अगस्त तक ३५० रुपये सैकड़ा

ऋषि दयानन्द के विचारों की विजय के लिए
अधिकाधिक प्रचार कीजिए

दयानन्द संस्थान

१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

वैदिक-साहित्य

१—वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण मूल्य ६० पैसे
२—उपनिषद्—वचनामृत। पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार मूल्य ४० पैसे
३—धर्मग्रन्थावलोकन—प्रमुख धर्म ग्रन्थों का प्रामाणिकपरिचय—मूल्य १) ५० पैसे
४—गीत मंजरी—नया तीसरा बड़ा संस्करण मूल्य १)४०। १००) सैकड़ा
५—ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा लिखित ... मूल्य ८० पैसे
६—मोक्ष का वैदिक मार्ग—आचार्य वैद्यनाथ-योगिराज पथिक ..... मूल्य ५० पैसे
७—ईशोपनिषद्—पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार ..... मूल्य ५०
८—भरित की अवनति के ७ कारण—ब्र० जगदीश एम० ए० मूल्य ५० पैसे
९—वैदिक-अध्यात्म—पं० वीरसेन वेदश्रमी मूल्य ८० पैसे
१०—श तक-त्रयी—वेद के ३०० मन्त्रों का अर्थसहित अनुपम संग्रह मूल्य १)
११—नीति-दोहावली ... ... मूल्य ८०
१२—प्रार्थना-सुमन—पं० चन्द्रभानु लिखित .... ५० पैसे
१३—मर्यादा पुरुषोत्तम राम—पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार मूल्य ८० पैसे
१४—ज्ञान ज्योति—४०० मंत्रों की व्याख्या ..... मूल्य ३)
१५—मां गायत्री—तीसरा संस्करण .... ८० पैसे ५०) सैकड़ा
१६—वैदिक सिद्धान्त—पं० यशःपाल सिद्धान्तयकार ... २)
१७—आर्य समाज के नियम—पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ८० पैसे
१८—लाल आंधी—महात्मा नारायण स्वामी, वैद्यगुरुदत्त—श्री प्रेम मूल्य ८० पैसे
१९—वैदिक समाजवाद—पं० वीरसेन वेदश्रमी ... ८० पैसे
२०—वैदिक विचारधारा ... ... मूल्य ८० पैसे
२१—संक्षिप्त महाभारत—स्व० पं० सन्तराम बढ़िया कपड़े की जिल्द मूल्य ५)
२२—बोध-रात्रि (महाकाव्य) ... . मूल्य ३)
२३—वेदों का यथार्थ स्वरूप—पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड मूल्य ५)
२४—ज्योति स्तम्भ—१२ आर्य नेताओं का प्रभावपूर्ण जीवन मूल्य ३)
२५—सत्यार्थ प्रकाश अजिल्द—प्रचार संस्करण २००) सैकड़ा
२६—सत्यार्थप्रकाशः—कपड़े की जिल्द—उपहार संस्करण ३२५) सैकड़ा
२७—सत्यार्थप्रकाशः—राजसंस्करण (बढ़िया जिल्द) २२५) सैकड़ा
२८—उपनिषद्-त्रयी पं० शिवदयालु कृत ... ... ८० पैसे
२९—अमृत-पथ—जीन को सुन्दर आनन्दमय बनाने का मार्ग दर्शन ३)
३०—स्वामी दयानन्द—जीवन चरित्र पृष्ठ २४४ ... ... १) ५०
३१—विश्व को आर्य समाज का संदेश १५) सैकड़ा
३२—उपनिषद् कथा माला—महात्मा नारायण स्वामी .... ४० पैसे
३३—ईश्वर भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द जी ... ... ८० पैसे
३४—धर्म का मार्ग—सुरेशचन्द्र विद्यालंकार ... ५० पैसे
३५—स्वामी श्रद्धानन्द (जीवन चरित्र) ... . ५० पैसे
३६—श्री कृष्ण—ब्र० जगदीश विद्यार्थी... ..... ४० पैसे

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान के भाई-बहनों से !

जून १९७३ का जन ज्ञान मासिक अंक दिनाङ्क १९-६-७३ को मुझे मिला। "आर्य समाज शताब्दी कैसे मनायें ?" यह लेख एक ठोस आधार प्रस्तुत करता है। उसके २१ सूत्री कार्यक्रम को रचनात्मक रूप देकर सचमुच हम अपने को, समाज-राष्ट्र एवं जगत् को अभ्युदयशील बना सकते हैं। रचनात्मक कार्य हमें अपने से प्रारम्भ करना चाहिए क्योंकि व्यक्ति से ही संसार बनता है।

परमात्मा की अमर वाणी वेद को इतने सस्ते व आकर्षक रूप में संसार के ज्ञात इतिहास में देना दयानन्द संस्थान की पहली देन है। आज भी कितने लोगों से सुना जाता है कि है कि वेद है ही कहाँ ? उसे तो शंखासुर नामक राक्षस ने चुरा लिया। ऐसी भ्रान्त धारणाओं को जो पौराणिक भाइयों की देन है—को दूर करने के लिए जन-ज्ञान के भाई-बहन आगे आयें। १०००० जन ज्ञान के भाई-बहनों के लिये वेद भाष्य की १२५०० प्रतियों के प्रकाशन की व्यवस्था में १०००० प्रतियाँ जन ज्ञान के भाई-बहन ही ले सकते हैं शेष का व्यय भार वहन करना अत्यंत साधारण कार्य है। जीवन धर्म से अधिक मूल्यवान् नहीं बल्कि धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करना वैदिक मार्ग को अपनाना ही जीवन जीना है। मेरे विचार से वेद भाष्य हजारों की संख्या में नहीं बल्कि लाखों की संख्या में प्रकाशित होना चाहिए ताकि संसार के कोने कोने में वेद भाष्य की प्रतियाँ पहुंच जायें जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति ऋषि भक्त बनें और अपने को वेदमय बना सकें।

जन ज्ञान के भाई-बहन ! वेद भाष्य प्रकाशन आपका निजी कार्य है इसका संसार के प्रत्येक परिवार में न पहुंच पाना हमारी ही कमजोरी होगी। हम संसार के प्रत्येक परिवार में वेद भाष्य पहुँचायेंगे और इसके लिए हम जीवन की आहुति भी देने के लिये तैयार रहेंगे—यह हमारा जीवन व्रत होना चाहिए -

ऋषि भक्त होकर ऋषि वचनों का पालन न करना हमें शोभा नहीं देता जब कि महर्षि दयानन्द ने कहा था कि वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है। हम अपने हृदय पर हाथ रख-कर सोचें कि हम ऋषि की वाणी का पालन कहाँ तक करते हैं ? क्या हम सचमुच ऋषि भक्त हैं ?

बहन राकेश रानी का वेद भक्तों से यह निवेदन कि वेद भाष्य प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिये आज ही कम से कम २५) की आहुति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भेजें जो एक साथ न भज सकें वे २) प्रति मास एक वर्ष तक भेजें । जन ज्ञान के भाई बहनों के लिये यह वड़ा ही साधारण निवेदन है । जन ज्ञान के भाई-वहन क्या हम अपनी बहन राकेश रानी के इस निवेदन को ठुकरा देंगें ? नहीं ?-नहीं-।।

शीतल मांझा (देवरिया) **शशि भूषण लाल**

मान्यवर !

महोदय यों तो संसार में मानवों की कोई कमी नहीं किन्तु वे सब जो कर्मशील तथा परोपकारी नहीं होते मानव कहलाने के अधिकारी नहीं होते हैं। मैंने लगभग सात आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों के अवसरों पर अनेक वक्ताओं के व्याख्यान सुने हैं किन्तु जितना प्रभावित मैं आप के व्याख्यान से हुआ हूँ अन्य से नहीं। यदि आप जैसे प्रकाण्ड पंडित इस महर्षि दयानन्द के देश में पैदा होजायें तो मेरा विश्वास है कि अवश्य ही यह संसार सुख की अनुभूति करने लगेगा। दुःख लेशमात्र को भी न रहेगा सब सुख प्राप्ति के साधन जो बतलाये हैं वे सब सत्य हैं इस लिए मैं ईश्वर को प्रत्यक्ष मानकर शपथ लेता हूँ कि आप के तथा महर्षि दयानन्द के बताये गये मार्ग का अनुसरण करूँगा। तथा सदैव सत्य का व्यवहार करूँगा। ऐसी मेरी इच्छा है।

सिकन्द्राबाद **महेन्द्रसिंह**

आदरणीय भारतेन्द्रनाथ जी,

सादर नमस्ते,

आप द्वारा भेजा जीवन चरित्र ११ वेद का प्रथम भाग स्टेण्ड तथा वीर अर्जुन की प्रतियाँ प्राप्त हुई, देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपने हमारा जो उत्साह बढ़ाया है उसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद। अगर यह पत्र जोधपुर में सर्वत्र आता तो प्रचार और अधिक होता। खैर हमने यहाँ प्रचार इतना कर दिया है कि हमें थैला लगाने का अवसर ही नहीं मिलता। समाज में ही बिक रही हैं। ३ सिनेमा में स्लाइडें चल रही है। दीवारों-दीवारों पर प्रचार हो रहा है। हम १९७५ तक घर-घर सत्यार्थप्रकाश व जीवन चरित्र पहुँचा देंगे। यहाँ का वातावरण इसके लिए बहुत अच्छा बन गया है जिस सत्यार्थ प्रकाश को सिवाय आर्यसमाजों के कोई नहीं लेता था आज सभी ले रहे हैं। विश्वविद्यालय में १००० की माँग है, रेलवे में २०० की माँग है। लेकिन सभी २) रुपये में माँग रहे हैं। आज हम तीन दिन से दान के लिए घूम रहे हैं परन्तु इस कार्य को अच्छा तो कहा है परन्तु दान नहीं मिल रहा है। अब आपसे यही प्रार्थना है कि किसी प्रकार से यह हमें २) रुपये में मिल जाय, आप शूरजी बल्लभ जी जैसे सेठों से दान लेकर कम-से-कम जोधपुर में जहाँ ऋषि को जहर दिया गया था २) रुपये में घर-घर सत्यार्थप्रकाश मिले। अगर ऐसा हो गया तो हमें एक माह में ३ हजार सत्यार्थप्रकाश बेच देंगे। ईश्वर आपको बल प्रदान करे।

—रामसिंह

इस पत्र का उत्तर कौन देगा ?

—संपादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या वेदों में मांस भक्षण का विधान है ?

सरिता के अनर्गल प्रलाप
का मुंह तोड़ उत्तर

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध अन्वेषक
श्री शिवपूजन सिंह (कुशवाहा)
एम० ए०
द्वारा प्रस्तुत है

इस आशा और विश्वास के साथ कि
आर्य जन भारी संख्या में इसे
मंगा कर वितरित करेंगे

मूल्य बढ़िया सफेद कागज पर—५०) सैकड़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदोऽखिलो धर्म मूलम् कृण्वन्तो विश्वमार्यम् :

सत्यार्थ प्रकाश क्यों पढ़ें ?

१. ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने के लिये,
२. सन्तानों को सुशिक्षित करने के लिये,
३. अन्ध विश्वास और पाखंडों को चुनौती देने के लिये,
४. वैदिक धर्म की पुन: स्थापना के लिये,
५. कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था की स्थापना के लिये,
६. गृहाश्रम के नियमों को समझने के लिये,
७. आश्रम व्यवस्था को समझने केलिये,
८. राज धर्म को जानने के लिये
९. ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने की उचित विधि को जानने के लिये,
१०. ईश्वर, जीव और प्रकृति के भेद को समझने के लिये,
११. जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को समझने के लिये
१२. बन्ध और मोक्ष विषय जानने के लिये,
१३. धर्म के सत्य स्वरूप को जानने के लिये,
१४. भारतवर्ष में फैले मत मतान्तरों में सत्य, असत्य का निर्णय करने के लिये,
१५. भारतीय संस्कृति को समझने के लिये,
१६. युवकों में बढ़ती हुई नास्तिकता को रोकने के लिये,
१७. धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति के लिये,
१८. विश्व में एक ही मानव धर्म के विस्तृत करने के लिये,
१९. वैचारिक क्रान्ति के लिये,

महर्षि दयानन्द का अमर ग्रन्थ

सत्यार्थ प्रकाश अवश्य पढ़ें

रावतसिह
प्रधान

भैरवसिंह वर्मा आर्य
वैदिक धर्म विशारद
मन्त्री

रामसिंह
आर्य सिद्धान्त भूषण
प्रचार मन्त्री

नगर आर्य समाज, गुलाब सागर, जोधपुर [राज०]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

क्या वेदादि ग्रन्थों में मांस-भक्षण, गोवध, नरमेध आदि की चर्चा है ?

कुख्यात मासिक पत्रिका 'सरिता' दिल्ली, फरवरी (द्वितीय) १९७३ ई० पृष्ठ ५१ से ६० तक में श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' का "रक्त सने पृष्ठ" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें लेखक ने ऋग्वेद में नरवलि, इन्द्र पर बैल खाने का दोष, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख पर आक्षेप, यजुर्वेद में नरवलि प्रथा, अथर्ववेद में मांस भक्षण, शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त, उपनिषद्, गृह्यसूत्र, रामायण, महाभारत आदि में मांस भक्षण की चर्चा की है। इस प्रकार के कई लेख पहले भी 'सरिता' में प्रकाशित हो चुके हैं जिनका उत्तर आर्यसमाज की ओर से दिया जा चुका है। आज तक उनका प्रत्युत्तर 'सरिता' में प्रकाशित नहीं हुआ। पुनः-पुनः उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति करना साधारण जनता को पथ-भ्रष्ट करना है। इस लेख में लेखक के लेख पर ऊहापोह से विचार किया जाता है। लेखक और 'सरिता' के सम्पादक को मेरी खुली चुनौती है कि यदि उनकी लेखनी में शक्ति हो तो मेरे लेख का प्रत्युत्तर प्रकाशित करें।

पृष्ठ ५१ "......ऋग्वेद (१-२४-१२ से १५) में 'शुनःशेप' नामक पुरुप का वर्णन है, जिसे नरमेध-यज्ञ में वलि चढ़ाने की तैयारी है......। ऋग्वेद के व्याख्यान रूप 'ऐतरेय ब्राह्मण' में यह कथा इस ढंग से चित्रित की गई है कि कई नए तथ्य अवगत होते हैं।......"

समीक्षा—श्री सायण, डा० राजेन्द्रलाल मित्र व श्री रमेशचन्द्र दत्त प्रभृति के लेख व टिप्पणियों को पढ़कर साधारण वेदानभिज्ञ लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि वास्तव में ऋग्वेद में 'नरवलि की प्रथा' की चर्चा है। वेदों में किसी व्यक्ति विशेष व अनित्य इतिहास का वर्णन नहीं है। वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं। अतः 'शुनःशेप' का कुछ और ही तात्पर्य है जिसको लौकिक संस्कृत से अर्थ करने वाले नहीं समझ सकते हैं। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य इस सूक्त पर है जो निरुक्त निघण्टु के अनुसार सत्य है।

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।
शुनःशेपोयमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥"

(ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २४ मंत्र १२)

महर्षि दयानन्द जी का भाष्य: "(तत्) वेदबोधसहितं विज्ञानम् (इत्) एव (नक्तम्) रात्रौ (तत्) शास्त्रबोधमुक्तम् (दिवा) दिवसे (मह्यम्) विद्याधनमिच्छवे (आहुः) कथयंति (तत्) गुणदोषविवेचकः। अत्र सुपांसु० इति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विभक्तेर्लुक् ।(अयं) प्रत्यक्षः (केतः)प्रज्ञाविशेषो बोधः। केत इति प्रज्ञानामसु पठितम्। निघं० ३।४। (हृदः) मनसा महात्मनो मध्ये (आ) सर्वतः (वि) विविधार्थे(चष्टे) प्रकाशयति। अत्रांतर्गतो ण्यर्थः (शुनःशेपः) शुनो विज्ञानवत इव शेपो विद्यास्पर्शो यस्य सः। श्वा शुपायी शुवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरु० ३।१८। शेपः शपतेः स्पृशतिकर्मणः। निरु० ३।२१। (यं) परमेश्वरं सूर्यं वा (अह्वत्) आह्वयति। अत्र लडर्थे लुङ् (गृभीतः) गृहीतः। हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वम्। अनेनात्र हस्य भः (सः) पूर्वोक्तो वेदविद्याभ्यासोत्पन्नो बोधः (अस्मान्) पुरुषार्थिनो धार्मिकान् (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) वरः (मुमोक्तु) मोचयति वा। अत्रांत्यपक्षे लडर्थे लोट् बहुलं छन्दसीति शपः श्लुरन्तर्गतो ण्यर्थश्च ॥१२॥

भावार्थ—अत्र श्लेषालंकारः। सर्वैर्मनुष्यैरेवमुपदेष्टव्यं मंतव्यं च विद्वांसो वेदा ईश्वरश्च मह्यं यं बोधमुपदिशंति यं चाहं शुद्धया प्रज्ञया निश्चिनोमि तमेव मया सर्वैर्युष्माभिश्च स्वीकृत्य पापाचरणाद्दूरे स्थातव्यम् ॥१२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (दिवा) दिन जिस ज्ञान का (आहुः) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (मह्यम्) विद्या धन की इच्छा करने वाले मेरे लिए (हृदः) मन के साथ आत्मा के बीच में (केतः) उत्तम बोध (आ वि चष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित होता है (तदित्) उसी वेद बोध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता, कहता और करता हूँ (यम्) जिसको (शुनः शेपः) अत्यन्त ज्ञान वाले विद्या व्यवहार के लिए प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य का (अह्वत्) उपदेश करते हैं जिससे (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर छुड़ावे और उक्त सूर्य भी अच्छे प्रकार जाना और क्रियाकुशलता में युक्त किया हुआ बोध (मह्यम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मुझको प्राप्त होता है (सः) हम लोगों को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग यथावत् किया करें।

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है। सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिए कि विद्वान्, वेद और ईश्वर हमारे लिए जिस ज्ञान का उपदेश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं वही मुझको और हे मनुष्यो! तुम सब लोगों को स्वीकार करके पाप और अधर्म करने से दूर रक्खा करे।"[1]

आचार्य पं० वैद्यनाथ जी शास्त्री कृत 'शुनः शेप' का तात्पर्य :—

" 'शुनः शेप' का अर्थ है ज्ञानी अथवा गतिमान् वायु, अग्नि, मित्र, वरुण, जल आदि पदार्थों से सम्पर्क रखने वाला। शेप पद का अर्थ प्रजनन इन्द्रियं है। परन्तु यहाँ पर वह अभिप्रेत नहीं।......अतः ज्ञानी का सम्पर्क रखने वाला अथवा गतिशील दिव्य पदार्थों के साथ सम्पर्क रखने वाला शुनः शेप है। इस प्रकार शुनःशेष का अर्थ ज्ञानी अथवा वैज्ञानिक है।

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम्" प्रथम भागात्मकम् तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३२६-३२७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शुनःशेप कोई व्यक्ति विशेष नहीं, इसका एक और भी प्रमाण मिलता है। वह यह कि ऋग्वेद ५।२।७ में "शुनश्चिच्छेपम्" प्रयोग मिलता है। शुनः+चित्+शेपम्—यह प्रकट करता है कि समस्त पद यहाँ पर नहीं प्रयुक्त है। अन्यथा मध्य में चित् कैसे आता। सायण ने व्यत्यय मानकर इसकी संगति लगाई है। स्वामी जी महाराज ने भी "शुनः शेपम्" पद स्वीकार किया है परन्तु वह शुनः+शेपम् को पृथक् रखने पर भी अन्वित होकर बन सकता है। इस मंत्र में शुनः और शेप को अलग-अलग पद मान कर भी ठीक अर्थसंगति लग सकती है। पदपाठ में शुनः शेपम् को एक पद माना गया है। पृथक् असमस्त पद मानकर संगति इस प्रकार लग सकती है :—

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्च।

अर्थात् हे अग्ने ! (विद्वन् अथवा परमेश्वर) अनेक बन्धनों से युक्त शुनः=विद्वान् के गाढ़ शेप=सम्पर्क को हटाइये।"[२]

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ :—

"ऋ० १।२४।१२ में आये शुनःशेप=सुखार्थी और उत्तम विद्वान्। मंत्र १३ में=शुनः शेप=सुखार्थी मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष।[३]

स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड (ऋ० १।२४।१२ का अर्थ)—

"(तत्-इत्-नक्तं तत्-दिवा) उसी वृत्त को रात्रि में उसी को दिन में (मह्यम् आहुः) मुझे विद्वान् जन बतलाते सुझाते हैं (तत्-अयं हृदः केतः) उसी वृत्त को यह मेरे हृदय का संकेत भी (आ वि चष्टे) घोषित करता है—प्रकाशित करता है कि वरुण परमात्मा बन्धन से छुड़ाने वाला है (यं गृभीतः शुनः शेपः-अह्वत्) जिस वरुण परमात्मा को बन्धन में गृहीत—पकड़ा हुआ इन्द्रिय सुखलोलुप आत्मा रक्षार्थ बन्धन मोचनार्थ पुकारता है उसे वह बन्धन से छुड़ाता है। अतः (सः राजा वरुणः अस्मान् मुमोक्तु) वह सर्वत्र राजमान परमात्मा बन्धन से छोड़ दे, मुक्ति प्रदान करे।*

इन्द्रियों के विषय में लोलुप रहना बुरा है। अवःपतन, महारोगी बनने, अपकीर्तिभागी होने और अनेक दारिद्य आदि अनिष्टों का हेतु है। तभी तो कहा है,

---

२. "वैदिक-इतिहास-विमर्श" पृ० ३१२-३१३ (जून १९६१ ई० आर्य साहित्य मंडल लि० अजमेर, प्रथमावृत्ति)

३. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" प्रथमखंड, द्वितीयावृत्ति, पृ० १३०

*"इन्द्रिय सुखलोलुप जीवात्मा की यह शाश्वतिक प्रार्थना है, स्कन्द स्वामी ने भी कहा है "अपि देवस्य नित्यत्वात् तत्कथमात्मा नित्यता कल्पे-कल्पे तस्मादतीते कल्पे यः शुनः शेपः स्वयमाहूतवान् अयमेव वा स." (स्कन्द स्वामी)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम् । उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि ।" विष और विषयों के बीच में भारी अन्तर है । विष तो खाया-पीया हुआ मारता है परन्तु विषय तो स्मरणमात्र से मार देते हैं । इन्द्रियविषयलोलुप जन विषयवासना में पकड़ा हुआ व्यसनबन्धन में जकड़ा हुआ बन्धनमोचन परमात्मा को पूर्ण पश्चात्ताप के साथ पुकारता है कि हे परमात्मन् मुझे इस बन्धन से, इस संकट से मुक्त करो, मैं पुनः इसमें न पड़ूँगा । परमात्मन् ! तू बन्धन मोचक है बन्धन से मुक्त कर देगा । विद्वज्जन कह रहे हैं और मेरे हृदय का भाव-घोष भी यही है, देव ! तू दयालु है मेरी पुकार अवश्य सुनेगा । यह ठीक है तू न्यायशील है जैसा कर्म होगा वैसा फल देगा । परन्तु तू सर्वज्ञ और अन्तर्यामी भी तो है । यह मेरी पुकार दिखावा नहीं अपात्रता या व्यर्थ रोदन नहीं किन्तु भीतरी है, वास्तविक है, पूर्ण पश्चात्ताप के साथ है, अन्तः-स्थल से है । पाप की ओर पग न रखने के निश्चय रूप मानस कर्म के साथ है । अतः मुझे बन्धन से मुक्त करो । मेरा आप उद्धार करो ।[४]

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, ऋग्वेद भाष्यकार : "शुनःशेप = विषयी"[५]

यहाँ पाँचों विद्वान् 'शुनः शेप" का अर्थ ज्ञानी, विद्वान्, सूर्य, विषयी, इन्द्रिय-लोलुप यौगिक अर्थ करते हैं । अतः रूढ़ि अर्थ करना भूल है ।

'शुनःशेप' के सम्बन्ध में अन्यान्य विद्वानों के मत

पं० रघुनन्दन शर्मा 'साहित्यभूषण' : "सायणाचार्य ने ऋग्वेद मं० १, सूक्त २४ से ३० तक के भाष्य में शुनः शेप की कथा लिखकर मनुष्य-बलि का एक भयंकर आदर्श सामने खड़ा कर दिया है । परन्तु वेद में इन बातों का कहीं नामो-निशान भी नहीं है । निरुक्त में शुनः शेप का अर्थ विज्ञानवेत्ता किया गया है ।"...[६]

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी : "......जिस सूक्त के आधार पर यह नरमेध सिद्ध किया जाता है उसमें हरिश्चन्द्र का नाम तक नहीं । यह ऋक् १।२४ सूक्त है जिसके प्रथम मंत्र का अर्थ यह है कि कोई पुरुष यह कथन करता है कि अमृतों में से मैं किस देवता का आराधन करूँ जो मुझको फिर माता-पिता के दर्शन कराये ।......

वास्तव में बात यह है कि परमात्मा ने इस सूक्त में जीव का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना कथन किया है, चाहे वह मुक्ति रूप अवस्था हो और चाहे

---

४. "वैदिक वन्दन" पृ० २४-२५ (जनवरी १९५८ ई० प्रथमावृत्ति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली द्वारा प्राप्य)

५. "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६५,

६. "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५१४-५१५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुनर्जन्म रूप अवस्था हो। इसमें आग्रह करने की आवश्यकता नहीं। हाँ, यह अर्थ इस सूक्त का सर्वथा मिथ्या है कि किसी यज्ञ स्तम्भ के साथ बाँधे हुए लड़के ने यह प्रार्थना की कि तुम मुझे छुड़ाओ।……"[७]

महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज : "…इसी प्रकार से शुनः शेप के अर्थ निरुक्त में विद्वान् किये हैं।"[८]

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ : (ऋ० १-२४ के विषय में लिखते हैं)—ऐतिहासिक पक्ष इस समस्त सूक्त को अजीगर्त ऋषि के पुत्र शुनःशेप की कथा में जोड़ता है। हमको तो ये प्रथम दो मंत्र पुनर्जन्मपरक प्रतीत होते हैं।

हम देवों में किस देव का शुभ नाम लेवें अथवा किस देव की स्तुति करें जो कि हमको फिर माता-पिता के दर्शन कराये। देवों में अग्नि की ही स्तुति करते हैं, जिसकी कृपा से फिर माता और पिता के दर्शन होंगे।"[९]

श्री फिलिप्स (Philipps) जैसे पाश्चात्य वेदज्ञ को भी नरमेध के सम्बन्ध में शंका है। वे लिखते हैं :—"Looking at these passages alone, perhaps we are not justified in concluding that Sunasepa was bound as a victim to be sacrificed. His "bonds" and "ropes" may be taken in a figurative sense, denoting the fetters of sin, especially as we have seen before that sin is often compared to a "bond" or a "rope" in the Veda, and, indeed, it is so compared in the last verse of this very hymn."[10]

अर्थ :—केवल इन पंक्तियों को देखते हुए, शायद हम लोग अनुमानतः यह उचित निर्णय नहीं कर सकते हैं कि शुनःशेप यज्ञ में बलि के लिए बाँधा गया था उसका "बन्धन" और "यूप" आलङ्कारिक अर्थ में लिया जा सकता है, विशेषतया हम लोग देख चुके हैं कि वेद में पाप की 'बन्धन' और 'यूप' के साथ तुलना की गई है और यथार्थ में इस ऋचा के अन्तिम सूक्त में यह वर्णित है।

डॉ० नाथूलाल पाठक पीएच०डी०, प्राध्यापक राजकीय महाविद्यालय, कोटा :—"शुनःशेप के इस आख्यान का मूल हमें ऋग्वेद संहिता में मिलता है।

---

७. **"वदिक काल का इतिहास" पृष्ठ ६० से ६२ तक (सन् १९२५ ई० प्रथम संस्करण, कर्णवास)**

८. **मासिक पत्र 'वैदिकधर्म" का "वेदाङ्क" वर्ष १९, सन् १९३८ ई० जनवरी, अङ्क १, पृष्ठ २० में प्रकाशित "वेद, उनका प्रादुर्भाव और उनके समझने का प्रकार" तथा "वेद रहस्य" प्रथम संस्करण, पृ० ३८,**

९. **"ऋग्वेदालोचन" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५८,**

10. The Teachings of the Vedas" PP. 200 **तुलना करो पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ कृत "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" पृष्ठ ११८,**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

यद्यपि ऋग्वेद संहिता में आख्यानों की कोई सत्ता नहीं है, फिर भी अनेकों कथाओं और घटनाओं के संकेत इसमें विद्यमान हैं।……यह आख्यान ऐतिहासिक घटना के रूप में दिखाई देता है, किन्तु संहिता के प्रसंग से निरा काल्पनिक सिद्ध हो जाता है।" ……११

श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा 'अज्ञात' ने अपने लेख में "वैदिक साहित्य" का उद्धरण, नरमेध की सिद्धि में दिया है। इसके लेखक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी हैं जो स्वयं ऋग्वेद में 'शुनः शेप' की कथा से नरमेध नहीं मानते हैं। देखिए :

पौराणिक विद्वान् पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ ने "ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद" किया है। वे लोग ऋग्वेद १।२४ मंत्र १ की टीका करते हुए पादटिप्पणी में लिखते हैं :—

"२४ से ३०वें सूक्त तक वक्ता शुनः शेप ऋषि है। उनके सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण की ७वीं पञ्जिका में लिखा है कि रोहित के पिता राजा हरिश्चन्द्र ने रोहित को वलि देने का प्रस्ताव किया। (पुत्र होने पर उसे वरुणदेव के नाम पर वलि देने की प्रतिज्ञा राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से की थी) रोहित ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। इसके अनन्तर शुनःशेप को वलि देने की बात पर उनके पिता अजीगर्त को राजी कर लिया गया। शुनःशेप घोर विपत्ति में पड़े। अन्त को उन्होंने विश्वामित्र से सम्मति ली। विश्वामित्र ने देवों की स्तुति करने की राय दी। शुनःशेप ने मरण-कातर होकर इन सात सूक्तों में देवों की स्तुति की और इस तरह उन्हें मुक्ति मिली। रामायण, बालकांड, ६१, ६२ अध्यायों में उल्लेख है कि शुनःशेप के पिता ऋचीक (अजीगर्त नहीं) ने शुनःशेप को वलि देने के लिए अयोध्याराज के हाथ बेच दिया था। विश्वामित्र के परामर्शानुसार स्तुति करने पर इन्द्र ने प्रसन्न हो; शुनःशेप की प्राणरक्षा की थी। मनुस्मृति, भागवत, विष्णुपुराण आदि में भी शुनःशेप की कथा है। सायण ने लिखा है कि खम्भे में बांधे जाने पर शुनःशेप ने अपने इन सूक्तों में देवों की स्तुति की थी। राजेन्द्रलाल मित्र ने अपने "Indo-Aryan" ग्रन्थ में इन सूक्तों से यह नतीजा निकाला है कि पहले आर्यों में नर-वलि प्रचलित थी। परन्तु विचार करने पर मित्र महाशय का अनुमान गलत निकलता है, क्योंकि सूक्तों में एक आर्त्त भक्त (शुनःशेप) की स्तुति के सिवा वलि, विश्वामित्र की सलाह, स्तम्भ-बन्धन आदि की कोई बात नहीं है। वलि पर चढ़ने वाला ही आर्त्त नहीं होता—अध्यात्म विद्या में प्रवेश करने वाला प्रत्येक ईश्वरभक्त पहले आर्त्त होता है। अधिक तो क्या प्रत्येक स्तुतिकर्त्ता आर्त्त होता है। शुनःशेप वही थे। इसके सिवा ऋग्वेद में कहीं भी नरबलि का उल्लेख या आभास नहीं है। इसलिए वेदों में नर-वलि की बात दिखाना

११. "ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन" पृष्ठ १४८-१४६ (सन् १६६६ ई० रोशन लाल जैन एण्ड सन्स, चौरडी का रास्ता, जयपुर द्वारा प्रकाशित)

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुचित है। जिस वेद में घी और सोमरस के अभिषव और आसव की बात है, उसमें नरबलि की बात कैसे हो सकती है ?'[१२]

अतः ऋग्वेद से नरमेध-प्रथा प्रदर्शित करना लेखक की प्रथम मूर्खता व वेदानभिज्ञता प्रकट करता है।

पृष्ठ ५१—"ऋग्वेद (१०-८६-१४) में इन्द्रदेव को अपनी हांकते हुए देखिए :—"उक्षणो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतिम्। उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।"

(मेरे लिए इन्द्राणी द्वारा प्रेरित यज्ञकर्त्ता लोग १५-२० बैल मार कर पकाते हैं, जिन्हें खाकर मैं मोटा होता हूँ। वे मेरी कुक्षियों को सोम से भी भरते हैं।)

समीक्षा—लेखक कोई ऋषि, मुनि या वेदों का कोई प्रसिद्ध विद्वान् नहीं है कि उसके अर्थ को मान लिया जाए। न वह अपने पक्ष की पुष्टि में किसी भाष्यकार की सहायता लेता है। चाँदी के चंद टुकड़ों के लोभ में लेखक ने अर्थ का अनर्थ करके श्रुति के साथ बलात्कार करने की कुचेष्टा की है। ऋ० १०।८६।१४ का सत्यार्थ देखिए :—

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ :

"(मे) मेरे (पञ्चदश उक्षणः) १५ बलयुक्त, शरीर के धारक प्राणों को अथवा (उक्षणः मे पञ्चदश) शरीर को धारण करने वाले मुझ आत्मा के (पंचदश) पन्द्रहों प्राणों को और (विंशतिम्) हाथ और पैर की २० अंगुलियों के समान शरीर के भीतर के २० अंगों को, वा (विंशतिम्) देह में प्रवेशशील आत्मा को विद्वान् लोग (साकं पचन्ति) एक साथ परिपाक, ज्ञान और अभ्यास से दृढ़ करते हैं वा विस्तार से वर्णन करते हैं। (उत) और मैं (पीवः) परिपुष्ट होकर (अद्मि) पुष्टिदायक भोग्य देह और नाना भोगों को वा उन प्राणों का भोग करता हूँ। वे समस्त प्राण (मे) मेरे (कुक्षी) दोनों कोखों, पार्श्वों में (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं। समस्त प्राण देह दायें, बायें दोनों ओर अपने अपने-स्थान पर अंग-प्रत्यंग में व्यापते हैं। वह (इन्द्रः) अद्भुत शक्तिशाली प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे ऊपर है। उसकी इस देह-रचना का कौशल अविज्ञेय है।"[१३]

'इन्द्र' का अर्थ परमात्मा श्री सायणाचार्य ने ऋ०१।३।४ के भाष्य में "... स च **परमेश्वरः** प्रविश्य दारयिता भीषयिता इति इन्द्रः" किया है।

पं० बिहारीलालजी शास्त्री, काव्यतीर्थ : उक्षा का अर्थ सर्वत्र बैल

---

१२. **'ऋग्वेद संहिता' सरल हिन्दी टीका सहित, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३०, ३१ की पाद टिप्पणी [आश्विन सवत् १९८८ वि० में वैदिक पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर (बिहार) से प्रकाशित]**

१३. **"ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य, सप्तम खण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २७४, २७५।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं होता है। देखो यजु० १७।६ "उक्षा समुद्रः।" यहाँ उक्षा समुद्र का विशेषण है। उव्वट कहते हैं—"उक्षासेचनः"। महीधर का अर्थ है "उक्षा वृष्टिद्वारसेक्ता"। दूसरे मंत्र में भी पञ्चदश, विंशति, तथा साकं शब्द रहस्यपूर्ण हैं। ५ को १० से गुणा करने पर ५० और ५० को २० से गुणा करने पर एक सहस्र होता है। एक सहस्र उक्षाओं को पचा जाने पर इन्द्र पूर्ण तृप्त हो जाता है। उसकी दोनों कोखें ऐहिक और आमुष्मिक वासनाएँ तृप्त हो जाती हैं। वे एक सहस्र उक्षा हैं सहस्रारचक्र-सहस्र दल कमल वा मस्तिष्क का वह स्थान जहाँ सुरत ले जाने पर योगी अमर पद का अधिकारी वनता है। उस पर के नीहार—आवरण, वस उन आवरणों का हवन हो जाता है तो सहस्रार चक्र का पूर्ण विकास हो जाता है। योगी की इस दशा का कवीर, नानक आदि सन्तों ने भी ऐसी आलंकारिक भाषा में वर्णन किया है। ५; १० और २० इनका पृथक्-पृथक् प्रयोग भी साभिप्राय है। प्रथम ५ ज्ञानेन्द्रियों के आवरण दूर करना इन उक्षाओं के वलिदान के पश्चात् स्पर्शादि पञ्च विषयों का जय तथा पुनः पंच स्थूल और पंच सूक्ष्म भूत और इनके विषयों के उक्षाओं अवश्यायों को हवन करना। जव माया के इन उक्षाओं अवश्यायों अर्थात् आवरणों को दूर कर दिया जाता है, आध्यात्मिक यज्ञ में इन सवकी वलि हो जाती है, तो जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। निर्मल दर्पण में सूर्य रश्मियाँ प्रतिफलित होकर दर्पण को प्रकाशमान करती हैं। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा में प्रकाशित ब्रह्मानन्द-आवरणों के नष्ट हो जाने पर आत्मा को आनन्द से भर देता है, उस दशा के ही ये उद्‌गार हैं। आत्मा की कोई कामना नहीं रहती। पूर्णकाम, तृप्त आत्मा विश्व से ऊपर हो जाती है। "विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" यह वचन सिद्ध हो जाता है।"[१४]

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ वाराणसी— "हे ऋत्विजो! मेरे लिए जो (पंचदश) पन्द्रह पत्तों वाले सोम और (विंशतिम्) वीस प्रकार के (उक्षणः) पराक्रमवर्धक उत्तम-उत्तम पदार्थों को (साकं) इन्द्राणी के साथ (पचन्ति) पकाते हो (उत अपि च, अहम् अद्मि) मैं उनको खाता हूँ और खाकर (पीव इत्) स्थूल भी होता हूँ और (मे) मेरी (उभा) दोनों (कुक्षी) कोख सोम-रस से (पृणन्ति) परिपूर्ण हो जाती हैं (सः) वह मैं इन्द्र (सर्वस्मात्) सवसे (उत्तरः) उत्तम हूँ।"[१५]

पं० सत्यानन्द जी शास्त्री, एम० ए०—"मेरे पन्द्रह प्राणों को और (हाथ-पैर की २० अंगुलियों के समान) शरीर के भीतर के वीस अंगों को (विद्वान्

१४. **"पशुबलि और वेद" पृष्ठ ८-६ [सं० २०१८ वि० केन्द्रीय आर्य सभा, आर्य-समाज मेस्टन रोड, कानपुर द्वारा प्रकाशित]**

१५. **"वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ३२ [चौधरी एण्ड सन्स, नीचीवाग, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोग) एक साथ दृढ़ करते हैं और मैं पुष्ट होकर उन सब का उपभोग करता हूँ। वे (प्राण) मेरे दोनों पार्श्वों में व्याप्त होते हैं। वह इन्द्र सबसे ऊपर है।

यहाँ 'उक्षण' का अर्थ 'प्राण' हैं। शरीर अंगों की वृद्धि का मूलाधार होने के कारण प्राणों को 'उक्षा' कहा जाता है।

'यहाँ भी पचन्ति' क्रिया का अर्थ 'दृढ़ करना' है।"[१६]

पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड : "आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ निम्न प्रकार है—(मे) मेरे लिए विद्वान् लोग (उक्षण:) वीर्य सेचन या सुखवर्षण में समर्थ प्राणों को (पंचदश) १५ और (विंशतिम्) २० या उनमें प्रविष्ट आत्मा को (साकम्) एक साथ (पचन्ति) परिपक्व करते हैं। तपस्या द्वारा उनको दृढ़ करते हैं (उत) और (अहम्) मैं (अद्मि) उनका भोग करता हूँ, उनको स्वीकार करता हूँ, (पीवः इत्) और मैं अति बलवान् रहता हूँ वे (मे) मेरे (उभा कुक्षी) दोनों कोखों को (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार (इन्द्र:) परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तर:) सबसे उत्कृष्ट है। (पंचदश) ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये ५ प्राण मिलकर १५ हुए। उनके भीतर प्रविष्ट होकर रहने वाला आत्मा विंशति है।"

भौतिक दृष्टि से 'उक्षा' का अर्थ सोम वा ऋषभक ओषधि पहले सप्रमाण बताया जा चुका है। अत: मंत्र का अर्थ यह होगा कि—

'ऋत्विक् वा वैद्य मुझ इन्द्र-राजा के लिए (उक्षण:) सोम के (पंचदश) १५ पत्तों को (पचन्ति) पकाते हैं और उसके द्वारा (विंशतिम्) ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १० प्राण इन सबको (साकं पचन्ति) मिलकर परिपुष्ट करते हैं।

मैं उन्हें (अद्मि) खाता हूँ और खाकर (पीव: इत्) पुष्ट होता हूँ। मेरी दोनों कोखें सोम रस से पूर्ण हो जाती हैं।

सोमरस वा ऋषभक ओषधि के १५ पत्तों का विधिपूर्वक सेवन मनुष्य को बलवान् बनाता है ऐसा मंत्र में भौतिक दृष्टि से उपदेश किया गया है। बैल के मांस का अर्थ लेना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि उसको वेद में अघ्न्य: (अहन्तव्य—न मारने योग्य) कहा है।"[१७]

पं० विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड वेदोपाध्याय (ज्योतिषपरक अर्थ करते हुए)—"ऋग् १०।८६। १-२३ मंत्र ज्योतिष सम्बन्धी है। इनमें वृषा कपि, मृग, श्वा वराहयु, उक्षा, वृषभ, धन्व, कुन्तव, उदञ्चोगृहम्, पर्शु:—इत्यादि शब्द राशिचक्र के भिन्न-भिन्न भागों का वर्णन करते हैं। वर्षाकाल का वर्णन है। सूर्य जब

---

१६. **"क्या प्राचीन आर्य लोग मांसाहारी थे?" पृष्ठ २६ [बिरजानन्द वैदिक संस्थान, संन्यासाश्रम, गाजियाबाद द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]**

१७. **"वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८४-२८५ [संवत् २०१४ वि०, प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार]**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वृष राशि में होकर वर्षा करता है तब का यह वर्णन है। वृषराशि को ही उक्षा कहा है। वृषराशि के मुख्य तारे १५ हैं, शेष मिलाकर २० के लगभग हैं। जब सूर्य वृष राशि में तपता है यही मानो इन उक्षाओं का परिपचन है, परिपाक है। जब सूर्य वृष राशि में होता है तब वृष के तारे दृष्टिगोचर नहीं होते। यही मानो उनका भक्षण-सा है। यह सब अलङ्कार है।"[१८]

पं० प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनिजी विद्यामार्तण्ड): "ज्योतिषपरक अर्थ) (मे हि पञ्चदश साकं विंशतिम्-उक्षणः पचन्ति) हे पुत्रवधू ! मेरे लिए ही 'मेरे खगोलरूप उदर को भरने के लिए ही' पन्द्रह साथ बीस अर्थात् पैंतीस उक्षाओं-तेरे वीर्य सेचक ग्रह-उपग्रहों को प्राकृतिक नियम सम्पन्न करते हैं—व्यक्त करते हैं। अतः (पीवः) प्रवृद्ध हो गया हूँ (मे उभा कुक्षी इत पृणन्ति) मेरी दोनों कोखें दोनों गोलार्ध पार्श्व ग्रह-उपग्रहों से पूर्ण करते हैं...।"[१९]

रिसर्च स्कालर पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य (भौतिक अर्थ करते हुए):—"पाश्चात्य लेखक ने ऋग्० १०।८६।१४ मंत्र के आधार से लिखा है कि इन्द्र उक्षा अर्थात् बैल का भक्षण करता है, उनका यह अर्थ भी भ्रामक है। इस मंत्र में उक्षा पद का अर्थ बैल नहीं, प्रत्युत सोम है।"

"...मेरे लिए १५ तथा २० उक्षों अर्थात् सोम डंठलों को याज्ञिक पकाते हैं, मैं उन्हें खाता हूँ और स्थूल हो जाता हूँ। इस प्रकार याज्ञिक लोग मेरी दोनों कुक्षियों को भर देते हैं। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।"

टिप्पणी—मंत्र ९।६९।४ में भी उक्षा पद सोम के अर्थ में आया है।"[२०]

यहाँ आठ विद्वानों के अर्थ दिये गये हैं जो इन्द्र द्वारा बैल खाने की चर्चा नहीं करते हैं। अतः 'सरिता' के लेखक की यह दूसरी मूर्खता व वेदानभिज्ञता प्रकट होती है।

पृष्ठ ५२—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८९, मंत्र १४ से स्पष्ट होता है कि गोहत्या ऐसी मामूली बात थी कि बातचीत में उपमा के लिए इसका प्रयोग होता था, देखिए—"मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते, अर्थात् : हे इन्द्र ! जैसे गोहत्या के स्थान पर गौएँ काटी जाती हैं, वैसे ही तुम्हारे इस अस्त्र से मित्रद्वेषी राक्षस लोग कट कर पृथ्वी पर सदा के लिए सो जायं।"

---

१८. वही, पृष्ठ २८४

१९. "वैदिक ज्योतिष् शास्त्र" पृष्ठ ४१ [सन् १९४६ ई० सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली से प्रकाशित]

२०. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ १११ [सन् १९७० ई०, हंसराज कालेज, संस्कृत विभाग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समीक्षा—पूरा मंत्र इस प्रकार है—

र्काहि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ।।

—[ऋ० १०।८६।१४]

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव श वद्यालंकार, मीमांसातीर्थ : "हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष ! हे स्वामिन् ! शत्रुविजयिन् ! (ते) तेरी प्रसिद्ध (अघस्य चेत्या) पापी का नाश कर देने वाली शक्ति (कर्हिस्वित्) कब (असत्) प्रकट होगी ? (यत्) जिससे तू (रक्षः भिनदः) दुष्ट शत्रुओं को भेदे, (मित्र-ऋुवः) मित्रों पर क्रूरकर्म करने वालों को (आ ईषत्) सब ओर से भयभीत करे (यत्) जिससे (शसने गावः नः) हत्यास्थान में पशुओं के तुल्य वे दुष्टजन भी (आपृक्) मर कर (अमुया पृथिव्याः) इस पृथिवी के ऊपर (शयन्ते) पड़ें ।"[२१]

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थः "हे (इन्द्र !) राजन् ! (ते) तेरा (सा चेत्या) वह वैरियों पर चलने वाला अस्त्र (कर्हिस्वित्) किसी समय भी (असत्) निरर्थक न होवे । (यत्) जब (अघस्य) न मरा हुआ अर्थात् बलवान् राक्षस (एषत्) मारने के लिए आये तब उसको (भिनद्) नष्ट करो (मित्रक्रुवः) मित्रों के साथ क्रूरकर्म करने वाले तेरे वैरी (शसने गावः न) जैसे वध्य भूमि में पशु मर कर गिर जाते हैं वैसे ही (अमुया) इस (पृथिव्या) विस्तृत अस्त्र से (आपृक्) सम्पर्क होते ही (शयन्ते) पृथिवी पर सो जावें ।

इस मंत्र में भी कहीं खाने-पकाने का नाम नहीं है । न तो इससे पशु मारने की विधि और न ऋषियों के खाने का प्रमाण मिलता है ।"[२२]

'उपमा' देने से गोहत्या सिद्ध नहीं हो सकती है । आजकल लोग कहते हैं कि हमारी सेना वैरियों को ऐसे काटती है जैसे कसाई लोग पशुओं को काटते हैं तो क्या इससे सिद्ध हुआ कि हम लोग मांस खाते हैं ?

अतः इस मंत्र से 'सरिता' के लेखक के अर्थानुसार भी गोमांस-भक्षण सिद्ध नहीं होता है । 'जैसे गोहत्या के स्थान पर गौएँ काटी हैं" यह तो उपमा है ।

पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड : "हे इन्द्र अथवा शूरवीर राजन् ! तेरा (सा) वह (हेतिः) शस्त्र (चेत्या) फेंकने योग्य (कर्हिस्वित्) कब (असत्) होगा (यत्) जब (अघस्य) पापी और (एषत्) युद्ध के लिए आते हुए (रक्षः) राक्षस को (भिनदः) मारेगा और (यत्) जब (गावो न) गायों की तरह (चारों हाथ पैर फैला-कर) (अमुया पृथिव्या) इस भूमि से (आपृक्) लिपटे हुए ये शत्रु (शसने) युद्ध स्थल में (शयन्ते) सो जायेंगे ।

---

२१. **"ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" सप्तम खण्ड, पृष्ठ ३१२**
२२. **"वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ३३**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रथम तो केवल उपमा से कोई बात सिद्ध करना ही अशुद्ध होता है। दूसरा यहाँ तो उपमा से भी गोहत्यादि की गन्ध तक नहीं है।

शसु हिंसायाम् से शसन शब्द बनता है जिसका अर्थ शयन करना या सोना है।...यदि शसन का अर्थ यहाँ गौओं का हत्या स्थान होता तो इस शयन्ते का प्रयोग न होकर 'हन्यन्ते' जैसा प्रयोग होता जिस प्रकार का कोई प्रयोग इस उपमा में नहीं है।*

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्त शास्त्री' का स्पष्ट मत है कि—

"ऋग्वेद (१।६१।१२) में 'गोर्न' उपमार्थक शब्द आया है, जिसे देखकर प्रो० विलसन और रमानाथ सरस्वती ने अनुमान लगाया है कि 'आर्य लोग गोमांस का व्यवहार करते थे'। परन्तु इन सज्जनों का अनुमान व्यर्थ है। सायण ने इसका अर्थ किया है—'जैसे पशु को कसाई काटते हैं।' यहाँ 'गो' का अर्थ साधारण पशु है और साधारण पशु को काटने वाले भी कसाई थे, आर्य नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि 'यज्ञ में गौ आदि पशुओं का वध होता था।' परन्तु वेदों में एक भी ऐसा मंत्र वा मंत्रांश नहीं है, जिससे इस विचार का अनुमोदन होता हो। गोमेध, अश्वमेध आदि में जो मेध शब्द है, उसका अर्थ 'पवित्र' है। यज्ञ को अध्वर कहा जाता है, जिसका अर्थ 'निर्मल' है। यज्ञ शब्द का अर्थ पूजन है। फिर पशुवध की बात कहाँ से आयी ?"...[२३]

स्वामी महादेवानन्द जी गिरि—संन्यासाश्रम हरिद्वार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित "Vedic Culture" नामक अपने ग्रन्थ में एक अध्याय "Slaughter of Cows in Vedic age" दिया है। आप लिखते हैं—

"In the Rigveda it has been clearly stated that cows are not to be killed. In the following mantras the term अघ्न्या (not to be killed) is used vide 1-37-5; 1-164-27; 1-164; 40; 4-1-6; 5-83-8; 7-68-8; 7-69-8; 7-10; 9-1-9; 9-80-2; 9-93-3;10-46-3;10-60-11;10-87-16;and 10-102-7."*

अर्थात्—"ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है कि गायें नहीं मारी जातीं। निम्न मंत्रों में 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) व्यवहृत है यथा १-३७-५; १-१६४-२७; १-१६४-४०; ४-१-६; ५-८३-८; ७-६८-८; ७-६९-८; ७-१०; ९-१-९; ९-८०-२; ९-९३-३; १०-४६-३; १०-६०-११; १०-८७-१६ और १०-१०२-७।" अतः वेदों से गोहत्या सिद्ध करना अनुचित है।

---

*"गोरक्षा परमकर्त्तव्य और गोहत्या महापाप" पृष्ठ १३ [सवत् २०१० आर्य-साहित्य भवन, नई सड़क, दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

२३. **"वैदिक साहित्य", पृष्ठ ३५९-३६० [नवम्बर १९५० ई०, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]**

*"Vedic Culture" PP. 132. **तुलना करो "वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २९४**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ ५२—'ऋग्वेद (५-२९-७; ८-१२-८ और ८-६६-१०) में देवताओं द्वारा बहुत-सी भैंसें खाने का वर्णन है। आगे बढ़ने से पूर्व यहाँ यह संकेत देना उचित होगा कि आर्य लोग जो कुछ अपने देवताओं के लिए उपहारस्वरूप अर्पित करते थे या जो कुछ यज्ञों में व्यवहृत करते थे, वह वे स्वयं भी खाया करते थे।…"

समीक्षा—प्राचीन व अर्वाचीनकाल में आर्य लोग भैंसें नहीं खाते थे और न खाते हैं। मुसलमान अवश्य खाते हैं। लेखक को उचित था कि पूर्ण मंत्र देकर अर्थ करता या अपने अर्थ की पुष्टि में किसी भाष्यकार को प्रस्तुत करता; निराधार लिख मारना अनुचित है।

ऋ० ५।२९।७ का पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

"सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् ॥"

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य : "(सखा) मित्रम् (सख्ये) (अपचत्) पचति (तूयम्) तूर्णम् (अग्निः) पावकः (अस्य) (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्म्मणा वा (महिषा) महिषाणां महताम् पशूनाम् (त्री) त्रीणि शतानि (त्री) (साकम्) (इन्द्रः) सूर्य्यः (मनुषः) मनुष्यस्य (सरांसि) तडागान् (सुतम्) वर्षितम् (पिबत्) पिबति (वृत्रहत्याय) मेघस्य हननाय (सोमम्) ऐश्वर्यम्।"

भावार्थ :—"अत्र वाचकलु०। यथा सूर्य्य ऊर्ध्वाऽधोमध्यस्थान् स्थूलान् पदार्थान् प्रकाशयति तथोत्तम मध्याऽधमान् व्यवहारान् राजा प्रकटीकुर्य्यात् सर्वैः सह सुहृद्वद्वर्तेत॥"

पदार्थ :—"जैसे (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य्य (तूयम्) शीघ्र (अस्य) जगत् के मध्य में (त्री) तीनों भुवनों को प्रकाशित करता हुआ (सरांसि) तड़ागों का (पिबत्) पान करता है और (वृत्रहत्याय) मेघ के नाश करने के लिए (सुतम्) वर्षाये गये (सोम) ऐश्वर्य को (अपचत्) पचाता है वैसे (सखा) मित्र (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से (सख्ये) मित्र के लिए (साकम्) सहित (मनुषः) मनुष्य के (महिषा) बड़े पशुओं के (त्री) तीन (शतानि) सैकड़ों की रक्षा करे।"

भावार्थ :—इस मंत्र में वाचक लु०—जैसे सूर्य्य ऊपर नीचे और मध्यभाग में वर्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम, मध्यम और अधम व्यवहारों को राजा प्रकट करे और सबके साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करें।"[२४]

महर्षि दयानन्द जी ने 'महिषा' का अर्थ निघण्टु के आधार पर 'बड़ा' किया है। श्री सायणाचार्य भी ऋ० ८।१२।८ में 'सहस्रं महिषान्' के वध का उल्लेख करते हुए "महतोऽसुरान् वृत्रादीन्" अर्थ करते हैं। 'महतो'=महान्।

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने भी 'महिषा' का अर्थ 'बड़ा' किया है।[२५]

२४. "ऋग्वेद भाष्यम्" सप्तम भागात्मकम्, पञ्चम मण्डलम्, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २१४-२१५।
२५. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" तृतीय खण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७७५-७७६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ : "(अस्य) इस सूर्य का (सखा) सहायक (अग्निः) ग्रीष्मकालाग्नि (सख्ये) मित्र सूर्य के लिए (त्रीणि) तीन (शतानि) अतुल (महिषा) बड़े (मनुषः) मनुष्यों के उपकारक (सरांसि) जलाशयों को (तूयं) शीघ्र (कृत्वा) अपने तपन रूप कर्म से (अपचत्) पकाता [औंटाता] है और उन (त्री) तीनों के वाष्प द्वारा (सुतम्) खींचते हुए (सोमम्) जल को (वृत्रहत्याय) जल बरसाने के लिए (इन्द्रः) सूर्य (साकं) एक साथ ही (अपिवत्) पी लेता है—सोख लेता है।

तात्पर्य यह है कि सूर्य का सहायक मित्र अग्नि सूर्य के लिए तीन बड़े-बड़े अन्तरिक्ष, पृथ्वी, द्युलोक स्थित जलाशयों को अपनी ग्रीष्मकालोष्मा से मेघ बरसाने के लिए एक ही वार सोख लेता है।"[२६]

महर्षि दयानन्द जी, शर्मा जी तथा चौधरी जी तीनों विद्वानों ने 'महिषा' का अर्थ 'बड़ा' किया है जो निघण्टु के अनुसार उचित है :—

"महिष ३।३, महान्, ५०१"*

पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य : इन्द्र के सखा अग्नि ने इन्द्र के लिए तीन सौ (महिषों) मेघों को शीघ्र ही पकाया। इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिए यजमान के तीन पात्रों में स्थित सोम रस को एक वार में ही पी लिया।"[२७]

शास्त्री जी ने 'मेघ' अर्थ किया है।

सायण ऋ० १०।१२३।४ में महिष का अर्थ 'मेघस्य शब्दम्" करते हैं।

'महिष' के अन्यान्य अर्थ :—

"अग्निर्वै महिषा"··· (शतपथ, ब्रा० ७।३।१।३४), यजु० १२।१११ अग्नि अर्थ में।

"प्राणा वै महिषाः" [शतपथ ब्रा० ६।७।४।५], यजु० १२।२० प्राणों के अर्थ में।

"ऋत्विजो वै महिषाः" [शतपथ ब्रा० १२।८।१।२], यजु० १२।३२ ऋत्विज् के अर्थ में।

श्री ग्रिफिथ ने ऋ० १०।१८९।२ में आये 'महिष' का अर्थ 'सूर्य' किया है—

ऋ० ८।१२।८ का सत्यार्थ :—

"यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥"

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ :—"हे (प्रवृद्ध) सबसे

---

२६. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ३४-३५

*"निघण्टु निरुक्त पदसूची" [पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार कृत "निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ८४९]

२७. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ ११४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महान् ! हे (सत्पते) सत्, व्यक्त जगत् सत्पदार्थों, सज्जनों और सत्य ज्ञान के पालक ! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, अनेक बड़े-बड़े शक्तिशाली सूर्य, मेघ, समुद्र, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, वा सहस्रों बड़े विघ्नों का नाश करता है (आत् इत्) इससे ही तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य, बल और आत्म-सामर्थ्य (प्रववृधे) बहुत बड़ा है ।"[२८]

पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य : "हे प्रवृद्ध ! हे सत्पते इन्द्र ! सहस्रों (महिषों) मेघों को तूने (अघः) खाया (मारा) !

सायण ने भी यह अर्थ किया है—

'महतो असुरान् वृत्रादीन् यदा (अघः) अवधीः ।

यहाँ पर 'महिष' का अर्थ 'मेघ' है ।"[२९]

'महिष' के सम्बन्ध में ऊपर प्रमाण दिये जा चुके हैं ।

यहाँ भी भैंसा खाने की चर्चा नहीं है ।

पौराणिक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री तथा पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ : "प्रबुद्ध और अनुष्ठाताओं के रक्षक इन्द्र, जिस समय तुमने सहस्रसंख्यक वृत्र आदि असुरों का वध किया, उसके अनन्तर ही तुम्हारा महान् बल भलीभाँति बढ़ा ।"[३०]

ऋ० मण्डल ८ सूक्त ६६ मंत्र का सत्यार्थ :—

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटां अहर्दृश उत क्रत्वा पणींरभि ॥

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ :

"हे मनुष्यो ! (अस्य+तविषीः) इसकी शक्तियाँ (कदू) कितनी (महीः) बड़ी पूजनीय और (अधृष्टाः) अक्षुण्ण हैं (वृत्रघ्नः) इस निखिल दुःख निवारक भगवान् का यश (कदु) कितना (अस्तृतम्) अविनश्वर और महान् है । हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) वह परमात्मा मनुष्य जाति की भलाई के लिए (विश्वान्) समस्त (वेकनाटान्) सूदखोरों को (क्रत्वा) उनके कर्म के अनुसार (अहर्दृशः) इसी जन्म में सूर्य्य को देखने देता है दूसरे जन्म में उनको अन्धकार में फेंक देता है । (उत) और (पणीन्) जो वणिक् मिथ्या व्यवहार करते हैं, असत्य बोलते हैं, असत्य तोलते, गौ आदि उपकारी पशुओं को गुप्त रीति से कसाइयों के हाथ बेचते इस प्रकार के मिथ्या व्यवसायी को वेद में पणि कहते हैं उनको भी वह इन्द्र (अभि) चारों तरफ से समाजों से दूर फेंक देता है ।

---

२८. "ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" पंचम खण्ड; प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २८८

२९. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ ११५

३०. ऋग्वेद संहिता [सरल हिन्दी टीका सहित] षष्ठ अष्टक [दोनों खण्ड], प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भावार्थ :—वेकनाट—संस्कृत में इसको कुसीदी, वृद्धिजीवी आदि नामों से पुकारते हैं। जो द्विगुण त्रिगुण सूद खाता है। शास्त्र, राजा और समाज के नियम से जितना सूद बँधा हुआ है उससे द्विगुण त्रिगुण जो सूद लेता है वह वेकनाट। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार लोग करते हैं। बे+क+नाट=द्वि शब्द के अर्थ में वे शब्द है। मैं एक रुपया आज देता हूँ। ठीक एक वर्ष में दो रुपये मुझे दोगे। इस प्रकार गुण प्राप्त होने पर जो नाट=नाचता है उसे वेकनाट कहते हैं। उसकी शक्ति अनन्त है। वह जगत् के शासन के लिए दुष्टों को सदा शासन करता है यह इसका आशय है।"[31]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ : "अथवा (अस्य) इसकी (महीः) बड़ी (तविषीः) शक्तियाँ (कत् उ) कितनी हैं ? अपरिमित हैं। (अस्य वृत्रघ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, नित्य स्थायी बल का स्वरूप (कत् उ) कितना और कैसा है ? यह नहीं कहा जा सकता है। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक-नाटान्) सब महाजनों वा विवेकी (उत) और (अहः दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले सब व्यवहार कुशलों को भी (क्रत्वा) अपने ज्ञान से (अभि) परास्त करता है। वह सर्वोपरि है।"

बेकनाटा :—वे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे। एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति। ततो द्वि शब्दैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इतिः सायणः। एक-एक के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' कहाते हैं। अथवा वेकनाट :—न ते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ् नाटञ्-भ्रटजः "पा० ५।२।३१" इति नाटच्। वेकनाटा, बेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा। अथवा विचिक पृथग् भावे, वेकः पृथग्भावः, वेकनाटाः छिन्ननासः, विनासिका, विवेकशीलनासिकाः कुशला वा।"[32]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ :

"इन्द्र का महाबल कब अधर्षक हुआ था। इन्द्र का वध्य कब अवध्य रहा ? इन्द्र सारे सूदखोरों, दिन गिनने वालों (पारलौकिक दिनों से शून्यों) और वणिकों को ताड़न आदि के द्वारा दबाते हैं।"[33]

टिप्पणी—त्रिवेदी जी ने इस मंत्र का पता ऋ० मंडल ८, सूक्त ५५, मंत्र १० दिया है। इस मंत्र में 'महिष' की चर्चा तक नहीं है। त्रिवेदी जी ने ऋ० ८।६६।१०

---

३१. **"ऋग्वेद-भाष्यम्" पृष्ठ २१५ [विक्रमाब्द : १९८७ वि० वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित व प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]**

३२. **"ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" पञ्चम खण्ड, पृष्ठ ६३०**

३३. **"ऋग्वेद संहिता" [सरल हिन्दी टीका सहित] षष्ठ अष्टक, पृष्ठ १३५**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का मंत्र "विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः । शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्" दिया है। वास्तव में इस मंत्र का शुद्ध पता ऋ० ८।७७।१० है। वैदिक यंत्रालय अजमेर के मुद्रित 'ऋग्वेद' में तथा सायण ने भी यही पता शुद्ध माना है। 'सरिता' के लालबुझक्कड़ लेखक का शायद ८।७७।१० के मंत्र से तात्पर्य हो, क्योंकि इसमें 'महिषान्' शब्द आया है। अतः इस पर भी विचार किया जाता है।

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥

पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ : "(इन्द्र) हे महाराज (त्वेषितः) आप से सुप्रार्थित (उरुक्रमः) सर्वत्र स्थित (विष्णुः) परमात्मा भी (तान्) उन-उन आवश्यक (विश्वा + इत्) समस्त वस्तुओं को (आ + भरत्) देता है। वह ईश्वर आपके राज्य में (शतम् + महिषान्) अपरिमित भैंस, गौ, अश्व, मेष और हाथी पशु देता है और (क्षीरपाकम् + ओदनम्) दूध में पका भात और (एमुषम्) जलप्रद (वराहम्) मेघ देता है। यह आपकी ही प्रार्थना का फल है अतः आप धन्य और प्रशंसनीय राजा हैं।

भावार्थ :—मेघ से घासों और अन्नों की वृद्धि होती उनसे पशुओं की और पशुओं से दूध दही की। जिसके राज्य में सदा वर्षा होती है और मनुष्य निरामय सुखी हों तो समझना कि राजा धर्मात्मा है।[३४]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ : "जिस प्रकार सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (त्वा इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरुक्रमः) बड़ा पराक्रमी (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन-उन समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूध में पके भात के समान सात्त्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे। सूर्य भी अपरिमित बड़े-बड़े मेघ (क्षीरपाकं) पानी से संचित होकर पकने वाले अन्नादि धान्य और जल को लाने वाली वायु को धारण करता है।"[३५]

पं० रामगोपालजी शास्त्री वैद्य : "इस मंत्र में 'महिष और 'वराह' दोनों पदों को देख कर वेदानभिज्ञ व्यक्ति को संशय हो जाता है कि १००भैंसों को और वराह (सूअर) को इन्द्र खाता है। वास्तव में महिष और वराह ये दोनों पद वेद में मेघों के लिए आये हैं।

३४. "ऋग्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ३०२
३५. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" पंचम खण्ड, पृष्ठ ६९५-६९६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'वराह' पद मेघ के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसके लिए प्रमाण—

'विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ।' ऋक् १।६१।७

इस मंत्र में वराह मेघ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यास्काचार्य ने भी—**"विराह" वाराहो मेघोभवति वराहारः। वरमाहारमाहर्षीः, इति च ब्राह्मणम् ।**

निरुक्त ५।४, निघण्टु १।१० में भी वराह पद मेघ नामों में पढ़ा गया है। इस प्रकार पाश्चात्य मान्यता के लेखकों को वैदिक साहित्य का ज्ञान न होने से, भ्रम हो गया अथवा जान-बूझकर अर्थ बिगाड़ा गया है।[३६]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ :

"इन्द्र, तुम्हारा जो सब जल है, उसे विष्णु (आदित्य) प्रदान करते हैं। विष्णु आकाश में भ्रमण करने वाले (बहुगति) और तुम्हारे द्वारा प्रेरित हैं। इन्द्र ने सौ महिषों (पशुओं), क्षीर-पक्व अन्न और जल चुराने वाले मेघ (वराह) को भी दिया।"[३७]

त्रिवेदी जी व झा जी दोनों पौराणिक पण्डित हैं। इन लोगों ने 'विष्णु' का अर्थ 'आदित्य', 'महिषों' का अर्थ 'पशुओं', 'वराह' का अर्थ 'मेघ' किया है।

इससे भैंस और सूअर खाने का अर्थ कहाँ प्रकट होता है ?

श्री सायण भाष्यम् : "नैरुक्तपक्षे तावत् । हे इन्द्र (ता) तानि यानि त्वया स्रष्टव्यानि उदकानि सन्ति तानि (विष्णुः) व्यापनशील आदित्यः (आभरत्) आभरति। लोकाय प्रयच्छति इत्यर्थः। कीदृशो विष्णुः (उरुक्रमः) बहुगतिः। किं स्वविरोधेन ? नेत्याह। (त्वेषितः) त्वयाप्रेरितः। न केवलं उदकानि एवं अपि च (शतं महिषान्) शत संख्याकान् पशून्। महिषशब्दो गवादेरपि उपलक्षकः, अथवा शत शब्द महतो यज्ञान् यजमानेभ्य आभरत् ददाति इत्यर्थः। किंच (क्षीरपाकम्) क्षीरपक्वम् (ओदनं) पायसम्। एतच्चरुपुरोडाशादेरुपलक्षणाम्। तद् यजमानेभ्य आभरत्। अथवा सर्वार्थं वृष्टिप्रदानद्वारौदनं प्राहरत्। किं च (इन्द्रः) (वराहं) जलपूर्णं मेघं हन्तीति शेषः। कीदृशं तम्! (एमुषम्) आ इत्यस्य स्थाने छान्दस एकारः। आमुषम् उदकस्य मोपकम् इत्यर्थः।"

यहाँ इतनी बातों का पता चलता है—

(क) विष्णु अर्थात् आदित्य न केवल जल अपितु सैकड़ों पशुओं को जीवन भी देता है। सौ भैंसों को खाने की बात चली गई।

(ख) शतं 'महिषान्' का अर्थ है सौ बड़े-बड़े कार्य या यज्ञ जिनमें पायस, पुरोडाश आदि पकाये जाते हैं। यहाँ 'महिष' का अर्थ 'भैंसा' नहीं अपितु 'यज्ञ' है।

(ग) 'वराह' का अर्थ 'सुअर' नहीं 'मेघ' है जो जल से पूर्ण है।

---

३६. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?" पृष्ठ ११६

३७. ऋग्वेद संहिता (हिंदी टीका सहित) षष्ठ अष्टक, पृष्ठ १६१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सायणाचार्य जी के अर्थ से अवतारवादियों के 'सुअर' का अवतार उड़ जाता है।

(घ) 'शतं महिषान्' के दो अर्थ—अपरिमितान् प्रशस्तान् पदार्थान्=बहुत से उत्तम पदार्थ।

(ङ) तेषां वाहनरूपान् महिषान्=वाहनरूप (ढोने वाले) भैंसे।

(च) 'वराह' का अर्थ 'वराहार' या असुर किया है।

इस प्रकार 'सरिता' के लेखक ने वेदमंत्रों से जो भ्रम फैलाने का कुप्रयास किया था उसे दूर कर दिया गया।

पृष्ठ ५२—यजुर्वेद के २१वें अध्याय के ४३वें मंत्र में कहा गया है।:—

"अश्विनीकुमारों के लिए बकरे की ताजी चरबी से यज्ञ करना चाहिए" और 'जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता (होमकरने से बची सामग्री को खाने वाला) वेदवित्···मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है' (देखें यजुर्वेद अ० १९ मंत्र २०, दयानन्द स्वामी कृत भाष्य)

यहीं हम दयानन्द स्वामी—वेदों के आधुनिक महापंडित—की प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' का भी उद्धरण प्रस्तुत कर दें तो असंगत न होगा। उक्त पुस्तक में प्रस्तुत विषय पर उन्होंने लिखा है, "जहाँ गोमेधादिक यज्ञ लिखे हैं, वहाँ पशुओं में नरों का मारना लिखा है, क्योंकि जैसे पुष्ट बैल आदि नरों में हैं, वैसे गाय आदि नहीं होते, जो वन्ध्या गाय होती है, उसका भी गोमेध में मारना लिखा है (देखें—स० प्र०, सन् १८७५, पृ० ३०३, दयानन्द भाव चित्रावली : पृष्ठ २८ पर उद्धृत)।"

समीक्षा—यजु० २१।४३ का अर्थ अशुद्ध किया गया है।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो···हविर्होतर्यज।

महर्षि दयानन्द सरस्वती : "हे (होतः) देने हारे! जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवे वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री को (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिन का पहिला अन्न (घासे अज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुँचाने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिनके उत्तम-उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिनके देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिनके मोटे-मोटे कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्होंने भली-भाँति अग्नि विद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटि प्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिसमें कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उघाड़ते हुए अंग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यवहार वा (अवत्तानाम्)नमे हुए उत्तम अंगों(एव)ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः)करें और(हविः) उक्त पदार्थों के खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर।

भावार्थ—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि का अच्छा-अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभाव युक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं।"[३८]

महर्षि दयानन्द जी के भाष्य में यहाँ कहाँ लिखा है कि 'अश्विनीकुमारों के लिए बकरे की ताजी चरबी से यज्ञ करना चाहिए।'

लेखक को शायद दिवास्वप्न हुआ है।

पौराणिकों का किया हुआ अर्थ अशुद्ध है।

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ ने इस मंत्र का आधिभौतिक वा आध्यात्मिक दो अर्थ किये हैं। पौराणिकों के अर्थ पर लिखते हैं :—"इस मंत्र का उव्वट और महीधर ने बकरे के कोख, कमर, लिंग, गुदा आदि भागों से माँस काट-काट कर अश्वि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है। सो असंगत है। वस्तुतः इसमें अश्वि नाम व्यापक बड़े अधिकारी लोगों को नियुक्त करने और सेना बल के निमित्त सैनिक लेने एवं अध्यात्म में प्राणायाम द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उपदेश किया है।"[३९]

"पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीं ँ ष्या। छन्दोभिः सामिधेनी-र्याज्याभिर्वषट्कारान्"—(यजु० १९-२०)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती : "(पशुभिः) गवादिभिः (पशून्) गवादीन् (आप्नोति) (पुरोडाशैः) पचनक्रियासंस्कृतैः (हवींषि) होतुमर्हाणि वस्तूनि (आ) (छन्दोभिः) प्रज्ञापकैर्गायत्र्यादिभिः (सामिधेनीः) सम्यगिध्यन्ते याभिस्ताः सामिधेनीः (याज्याभिः) याभिः क्रियाभिरिज्यन्ते ताभिः (वषट्कारान्) ये वषट्धर्म्या क्रियां कुर्वन्ति तान्।

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽत्र बहुपशुर्हविर्भुग्वेदवित्सत्क्रियो मनुष्यो भवेत् स प्रशंसामाप्नोति।

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे सद्गृहस्थ (पशुभिः) गवादि पशुओं से (पशून्) गवादि पशुओं को (पुरोडाशैः) पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्दों की विद्या से (सामिधेनीः) जिनसे अग्नि प्रदीप्त हो उन सुन्दर समिधाओं को (याज्याभिः) यज्ञ की क्रियाओं से (वषट्कारान्)जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं उनको (आ, आप्नोति)

---

३८. "यजुर्वेद भाष्यम्" तृतीयो भागः, द्वितीयावृत्ति (अजमेर), पृष्ठ ४३-४४

३९. "यजुर्वेद संहिता भाषाभाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २१०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ।

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है।[४०]

महर्षि दयानन्द जी के इस भाष्य व भावार्थ से यह कहाँ प्रकट होता है कि बहुत पशुवाला पशुओं का होम करे। भाष्य उद्धृत करने का आपका यही नापाक इरादा है अन्यथा जिसकी आँख फूट गई हो वही ऐसा समझेगा।

इसका वास्तविक तात्पर्य भाष्य में देखिए जहाँ स्पष्ट लिखा है कि "गवादि पशुओं के पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से हवन करे···।"

दूध, घृत आदि उत्तम पदार्थ हैं उनसे हवन करने का विधान है। जिसके पास बहुत पशु नहीं होंगे उसको दूध, घृत पर्याप्त न मिलने से हवन कैसे करेगा ?

इस साधारण-सी बात को आप बतंगड़ बना रहे हैं।

सन् १८७५ के 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम संस्करण को महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवन काल में ही रद्द कर दिया था और दूसरे संस्करण का बहुत-कुछ अंश उनके जीवनकाल में मुद्रित हो चुका था जो प्रामाणिक माना जाता है। द्वितीय संस्करण की पाण्डुलिपि अजमेर में है जिसमें 'गोमेध' आदि में गाय का मारना नहीं लिखा है। आपने यह आक्षेप "दयानन्द भाव चित्रावली" से किया है जिस पर प्रतिबंध लगा हुआ है। उस पुस्तक से आक्षेप करना मूर्खता नहीं तो क्या है। 'दयानन्द भाव चित्रावली' का उत्तर आर्य जगत् के विद्वानों ने दिया था—शास्त्रार्थमहारथी पं० मनसाराम जी 'वैदिकतोप' ने "पौराणिक दम्भ पर वैदिक बम" पुस्तक में तथा पं० भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक ने 'त्रिशूली-त्रिशूलोच्छेदन'[४१] पुस्तक में। पहली पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया और शर्माजी की पुस्तक अभी भी मिलती है।

शर्मा जी ने पृष्ठ ४१-४२ में उत्तर दिया था, देख लें। 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम संस्करण में भी 'गोवध' का निषेध महर्षि दयानन्द जी ने किया है। देखिए—"··· एक गाय से लाख मनुष्यों का पालन हो सकता है उसको मार के मांस से ८० पुरुष तृप्त हो सकते हैं फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल्य ही नष्ट हो जाता है जो बैल आर्यावर्त्त में पाँच रुपयों से आता था सो अब ३० से भी नहीं आता और कुछ गांव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उसकी सीमा में भूमि रखनी चाहिए जिसमें कि वे पशु चरैं जैसी दुग्धादिक से मनुष्य शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्नादिकों से नहीं होती और बुद्धि भी नहीं बढ़ती इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिए कि जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होते

---

४०. "यजुर्वेद भाष्यम्, द्वितीयो भागः, तृतीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ ६२१,

४१. सन् १९२७ ई० में श्री भारतेन्द्र औषधालय के अध्यक्ष प० इन्द्रदत्त शर्मा वैद्योपाध्याय, संभल, जि० मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं वे कभी न मारे जायं।"...४२

'सत्यार्थप्रकाश' 'द्वितीय संस्करण : एकादश समुल्लास में भी महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं :—

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है ?

उत्तर—इसका अर्थ तो यह है कि—

'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' (शत० १३।१।६।३)

'अन्नं हि गौः' (शत० ४।३।१।२५)

'अग्निर्वा अश्वः' (शत० ३।६।२।५)

आज्यं मेधः' (शत० १३।३।६।२)

घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार कर होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई और जहाँ-जहाँ लेख हैं, वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो, राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा यजमान और अग्नि में भी घी आदि का होम करना'अश्वमेध'। अन्न, इद्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध', जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहलाता है।"

'सत्यार्थ प्रकाश' की द्वितीयावृत्ति महर्षि दयानन्द जी ने स्वयं लिखी थी। इसमें निम्नांकित प्रमाण हैं—

'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम संस्करण सन् १८७५ ई० में स्टार प्रेस बनारस में मुरादाबाद निवासी श्री राजा जयकृष्णदास जी के व्यय से मुद्रित हुआ था।

'सत्यार्थप्रकाश' का द्वितीय संस्करण सन् १८८४ ई० में वैदिक यंत्रालय, प्रयाग में मुद्रित हुआ था और उसका ही पुनर्मुद्रण प्रयाग तथा अजमेर आदि नगरों में हुआ, यही वह सत्यार्थप्रकाश है जो कि महर्षि दयानन्द जी तथा आर्यसमाज को मान्य है।

महर्षि दयानन्द जी का देहावसान ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० तदनुसार दीपावली संवत् १९४० वि० को हुआ था।

'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका निर्माण किस प्रकार हुआ। यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द जी की जन्मभूमि काठियावाड़ (गुजरात) में थी, इसलिए उनकी मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने अध्ययन संस्कृत भाषा में किया था इसलिए वे संस्कृत भाषा में प्रगल्भ थे। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने कोई विदेशी भाषा अथवा भारत की प्रान्तीय भाषा भी सीखी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए महर्षि दयानन्द जी गुजराती तथा

---

४२. असली सन् १८७५ का सत्यार्थप्रकाश, पृ० ५०८-५०९ (संवत् १९८६ वि० में बी० एन० प्रेस, इटावा में मुद्रित व पं० कामता प्रसाद दीक्षित, अमरौधा, जि० कानपुर द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कृत भाषायें ही जानते थे यह निश्चित है। महर्षि जी ने सन् १८६४ ई० में विद्याध्ययन समाप्त किया और श्री स्वामी विरजानन्द जी से विदाई ली। उस समय से लेकर मई सन् १८७४ ई० तक उत्तर भारत में वे संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान देते रहे और कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् उनके व्याख्यान का प्रान्तीय भाषा में अनुवाद किया करता था। इन्हीं दिनों में कलकत्ते में एक विशेष घटना हुई। २३ मार्च सन् १८७३ ई० को महर्षि जी ने एक व्याख्यान संस्कृत भाषा में कलकत्ते में श्री गोराचाँद के मकान पर दिया था। ब्राह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन भी उस व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान का बंगभाषा में अनुवाद पं० महेशचन्द्र 'न्यायरत्न' ने किया। अनुवाद के समय संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों ने यह आपत्ति उठाई कि न्यायरत्न महोदय स्वामी जी के अभिप्राय का अन्यथा वर्णन कर रहे हैं और ऐसी बातें कर रहे हैं जो स्वामी जी ने नहीं कही। इस पर श्री केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को सम्मति दी कि वे प्रान्तीय भाषा सीखकर उसमें ही व्याख्यान दिया करें। स्वामी जी ने इस सम्मति को स्वीकार कर लिया और हिन्दी भाषा सीखनी आरम्भ की। सबसे प्रथम स्वामी जी ने मई सन् १८७४ ई० में वाराणसी में हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने का प्रयत्न किया। इससे स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी उस समय तक हिन्दी भाषा नहीं जानते थे।

उन दिनों श्री राजा जयकृष्णदास जी वाराणसी के डिप्टी कलेक्टर थे। आपने स्वामी जी से अपने विचारों को पुस्तकाकार करने की प्रार्थना की, स्वामी जी ने इसे स्वीकार कर लिया। तब राजा साहब ने पं० चन्द्रशेखर* नाम के व्यक्ति को पुस्तक लिखने के लिए नियुक्त किया। स्वामी जी अपनी भाषा में बोलते थे और पं० चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। स्वामी जी हिन्दी जानते ही नहीं थे, अवश्य संस्कृत में बोलते होंगे और पण्डित चन्द्रशेखर हिन्दी में अनुवाद करके लिखते होंगे। इस प्रकार सत्यार्थप्रकाश का निर्माण जून सन् १८७४ ई० को आरम्भ हुआ और वह सन् १८७५ ई० में वाराणसी में मुद्रित हुआ।

इसके दो वर्ष के अनन्तर अर्थात् सन् १८७७ ई० में श्री स्वामी जी एक स्थान पर मृतक श्राद्ध पर व्याख्यान दे रहे थे और उसका खंडन कर रहे थे। इतने में ही एक व्यक्ति ने जनता में से ही पुस्तक दिखलाकर कहा कि स्वामी जी ने पुस्तक में तो मृतक श्राद्ध का मण्डन किया है और व्याख्यान में खण्डन कर रहे हैं। स्वामी जी के पूछने पर उसने 'सत्यार्थप्रकाश' दिखला दिया। स्वामी जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि आक्षेप उचित है और लेखक ने कुछ मास पश्चात् ही सन् १८७८ ई० में एक नोटिस

***राजा जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' लिखने के लिए एक महाराष्ट्रीय पंडित चन्द्रशेखर को नियुक्त किया। महर्षि बोलते जाते थे और पण्डित चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। (देखो—पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का जीवन चरित, पृष्ठ २७२)**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुद्रित करवाया जो "यजुर्वेदभाष्य" के प्रथम अंक के टाइटिल पृष्ठ पर मुद्रित हुआ। वह नोटिस इस प्रकार था—

सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों और उनके अनुकूल हैं, उनको मैं मानता हूँ, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये 'सत्यार्थप्रकाश' वा 'संस्कार विधि' आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन ग्रन्थों के मतों को जनाने के लिए लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती है उन सबको प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वर-वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य हैं और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाए वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ। और जो 'सत्यार्थप्रकाश' के पृष्ठ ४२, पंक्ति २५ में—पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण करे और जो मर गए हैं उनका तो अवश्य करें। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिए कि "जीवितों की श्रद्धा सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हैं उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।"[४३]

अब 'सत्यार्थप्रकाश' द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में विचार कीजिए। श्री स्वामी जी ने इसकी भूमिका उदयपुर में भाद्रपद सं० १९३९ वि० में समाप्त कर दी थी जैसा कि भूमिका के अन्त में छपा है। निःसन्देह यह ग्रन्थ स्वामी जी की मृत्यु-तिथि दीपावली संवत् १९४० से एक वर्ष पूर्व ही लिखा जा चुका था और इसका मुद्रण भी बहुत कुछ स्वामी जी के जीवनकाल में ही हो चुका था जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है:—

(क) महर्षि जी ने संवत् १९३१ वि० में 'पंचमहायज्ञ विधि' का प्रथम संस्करण बम्बई में मुद्रित कराया था। उसके पितृतर्पण प्रकरण में लिखा है—"···**श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं क्रियते तत् तर्पणम्**" (पृष्ठ २०, २१)

अक्रोधनः··· (मनु के दो श्लोक उद्धृत करके)

भावार्थ :—"अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषः श्रद्धया सत्याचारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्रद्धया देवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात्"—(पृष्ठ २१)

४३. पं० भगवद्दत्त बी० ए० द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" प्रथम संस्करण; पृष्ठ १००।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे स्पष्ट रूप से जीवित श्राद्ध का विधान किया है।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन आषाढ़ ११ संवत् १९३१ वि० से प्रारम्भ हुआ था। उसके लगभग ३ मास पीछे "पंचमहायज्ञविधि" का लेखन हुआ था। इससे स्पष्ट है कि उस समय महर्षि मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते थे।

(ख) महर्षि जी ने एक पत्र मुन्शी **समर्थदान** जी को लिखा जो उस समय वैदिक यन्त्रालय के प्रवन्धक थे। पत्र इस प्रकार है :—

"मुन्शी **समर्थदान** जी, आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २९ अगस्त का लिखा आया। समाचार विदित हुआ। और जो तुमने रजिस्टर और दोनों की भाषा और सभा का कृत्य भेजा सो पहुँचा। इस भाषा को देखकर जैसा होगा वैसा लिखा जायगा।...आज यहाँ से २४८ से लेके २७८ तक 'सत्यार्थप्रकाश' और १८१० से लेके १८९५ तक ऋग्वेद के पत्रे भाषा बनाने के लिए भेजे हैं। पहुँचने पर ज्वालादत्त को दे देना और रसीद भेज देना। प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' के पत्रे २५० तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं सो ४८-४९-५० अंक घटे हैं। तुमको भ्रम न हो। परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहाँ २५० पृष्ठ है उसके अंत और २४८ पृष्ठ के आदि की संगति तुम मिला देना और २५१ पृष्ठ के आदि और जो अब २५० वाँ भेजा है उसकी सभी संगति मिला लेना। और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं।"...४४

—दयानन्द सरस्वती

जोधपुर (मारवाड़)
भाद्र वदी ३० संवत् १९४०

यह पत्र महर्षि जी ने अपने देहावसान से दो मास पूर्व लिखा था। यह पत्र निश्चय से सिद्ध करता है कि महर्षि जी के जीवनकाल में ही "सत्यार्थप्रकाश" के द्वितीय संस्करण के ग्यारह समुल्लास मुद्रित हो चुके थे।

(ग) "मुन्शी **समर्थदान** जी, आनन्दित रहो।

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेकर ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थप्रकाश' का भेजते हैं सम्भाल लेना। आश्विन वदी ८ सोमवार संवत् १९४० को 'संस्कार विधि' के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं पहुँचे होंगे और पहुँचने पर रसीद भेज देना।"...४५

—दयानन्द सरस्वती

जोधपुरराज मारवाड़
मिति आश्विन १३ शनि० संवत् १९४०

इस पत्र से यह स्पष्ट है कि महर्षि जी के जीवनकाल में ही 'सत्यार्थ-प्रकाश' ३४४ पृष्ठ मुद्रित हो चुका था; तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थप्रकाश' के तेरहवें समुल्लास में है। यह पत्र महर्षि जी ने अपनी मृत्यु से एक मास पूर्व लिखा था।

---

४४. वही, पृष्ठ ४८७।
४५. वही, पृष्ठ ५१२।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(घ) आश्विन वदी ८ सोमवार संवत् १९४० (२४ सितम्बर १८८३ ई०) मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"मुन्शी समर्थदान जी, आनन्दित रहो।

आज 'संस्कार विधि' के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं, संभाल के छपवाना।…और 'सत्यार्थप्रकाश' जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहाँ से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुँचते समय भेज देंगे।"……

जोधपुरराज मारवाड़।[४६] दयानन्द सरस्वती

इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो गयी कि 'सत्यार्थप्रकाश' के संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपि महर्षि जी के निर्वाण से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी और १३ वें समुल्लास तक की प्रेसकापी महर्षि जी के निर्वाण से लगभग एक मास पूर्व मुद्रणालय में पहुँच गई थी।

अतः आपने प्रथम संस्करण से जो उद्धरण दिया है वह व्यर्थ है।

पृष्ठ ५३—यजुर्वेद अध्याय ३१ में 'पुरुषमेध' यज्ञ (जिसमें नरबलि दी जाती थी) का विवरण उपलब्ध होता है—भूतकालिक क्रियाओं में वहाँ नवम मंत्र में लिखा है :—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

(उस यज्ञार्थ पुरुष का जल छिड़क कर प्रोक्षण किया। उससे देवताओं और ऋषियों को पूजा अर्थात् उनके निमित्त उसकी बलि दी)

साथ के मंत्र में पुनः पूछा गया है कि जिस पुरुष की बलि दी गई उसका कौन-कौन सा भाग किस-किस को मिला (देखें दसवाँ मंत्र) १४वें मंत्र में पुनः स्पष्ट लिखा है। यज्ञ में पुरुष के मांस को हविः बनाया गया।

समीक्षा—'नरमेध' का सत्यार्थ ऊपर बतला दिया गया, पर आपको तो वेद से नरबलि सिद्ध करने का कुप्रयास करना है। आपने यजु० ३१वें अध्याय को समझा ही नहीं है। इधर-उधर के वाममार्गियों की टीकाओं को देख कर भ्रम में पड़कर जनता को भी पथ-भ्रष्ट करने लगे।

'पुरुषमेध' यज्ञ में नरबलि दी जाती थी यह आपका भ्रममात्र है। यजुर्वेद में ही 'पुरुषवध' का निषेध है :—

"इमं मा हिंसीर्पिद्बादं पशुँ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुँ पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु" (यजु० १३।४७)

इस मंत्र में "इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्" इस वाक्य पर विशेष ध्यान देना

४६. वही, पृष्ठ ५०४।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए। इस वाक्य का अर्थ है कि **"इस दो पैर वाले पशु की हिंसा न कर"**। दो पैर वाले पशु से, यहाँ मनुष्य का ग्रहण है।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, वेदमूर्ति—"हे अग्ने ! तुम यज्ञ कर्म के निमित्त चयन किये गये हो। तुम सहस्र नेत्र वाले हो। इस दो पाँव वाले **पुरुष रूप** पशु की हिंसा मत करो।..."४७

आचार्य पं० गोपालप्रसाद कौशिक—(उव्वट महीधर भाष्य का अनुवाद करते हुए) :—"हे अग्ने ! सुख पाने के लिए बढ़े हुए सहस्र नेत्र वाले इन्द्र तू **दो पैर वाले मानव** और पवित्र फलप्रद जंगली गवादि पशु जीव को मत मारे।..."४८

जब यजुर्वेद के एक स्थल में पुरुषवध का निषेध है तब दूसरे स्थल में वध का आदेश कसे होगा ? वेदों में परस्पर विरोध नहीं होता, क्योंकि वेद अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान हैं।

आपने ३१।९ का अर्थ अशुद्ध किया है। सत्यार्थ देखिए :—

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती—"(तम्) उक्तम् (यज्ञम्) संपूजनीयम् (बर्हिषि) मानसे ज्ञानयज्ञे (प्र) प्रकर्षेण (औक्षन्) सिञ्चन्ति (पुरुषम्) पूर्णम् (जातम्) प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्त्तारम् (अग्रतः) सृष्टेः प्राक् (तेन) तदुपदिष्टेन वेदेन (देवाः) विद्वांसः (अयजन्त) पूजयन्ति (साध्याः) साधनं योगाभ्यासादिकं कुर्वन्तो ज्ञानिनः (ऋषयः) मन्त्रार्थविदः (च) ये।"

भावार्थ :—विद्वद्भिर्मनुष्यैः सृष्टिकर्त्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्यः पूजनीयश्च।

पदार्थ :—हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवाः) विद्वान् (च) और (साध्याः) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषयः) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रतः) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र, औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं (तम्) उसको तुम लोग भी जानो।

भावार्थ :—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदय रूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें।"४९

श्री वैष्णव सम्प्रदाय के महात्मा स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज—

"तं यज्ञमिति। तमग्रतो जातं जातेभ्यः पदार्थेभ्यः पूर्वमेव वर्तमानं यज्ञं यजनीयं

---

४७. **यजुर्वेद (सरल हिन्दी भावार्थ सहित) पृष्ठ ३१३ (१९६७ ई० संस्कृति संस्थान बरेली द्वारा प्रकाशित चतुर्थ संस्करण)**
४८. **यजुर्वेद (सरल हिन्दी के भावार्थ सहित) पृष्ठ २४३-२४४ (१९६८ ई० गंगा बुक डिपो, घीयामन्डी, मथुरा द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)**
४९. **"यजुर्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ७३६ (संवत् १९४६ वि० अजमेर)**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरुषं पापनाशकं परमात्मानं बर्हिषि पवित्रे मनसि प्रौक्षन् प्रकर्षेणौक्षन् सिंचन्, भक्ति-जलेनोपासका इति भावः। तेन तदुक्षणदर्शनेन देवा अन्ये विद्वांसो ये च साध्याः सद्य एवोपासना पद्धति प्रविष्टा ये चर्षयो गतिमन्तो बुद्धिमन्तो वेदवेत्तारो वा तेपि तं पुरुषमयजन्त। इत एव परमेश्वरस्य मानसिकपूजायाः प्रारम्भः।"५०

आपके अर्थ से भी 'नर बलि' सिद्ध नहीं हो रही है। आपने परमेश्वर की मानसिक पूजा की चर्चा की है।

भावार्थ :—"उस पूजनीय पापनाशक, सबसे आगे प्रादुर्भूत पूर्ण परमेश्वर की विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में भक्तिरूपी जल से अभिषिक्त करते हैं, उपासना करते हैं। उसी परम पुरुष से विद्वान् और योगाभ्यासी साधना वाले ज्ञानी, ऋषि, वेदों के ज्ञाता बुद्धिमान् परमेश्वर की मानसिक पूजा प्रारम्भ करते हैं।"

आपने ३१।१४ का अर्थ किया है :—"यज्ञ में पुरुष के मांस को हविः बनाया गया।"

यह अर्थ भी अशुद्ध है। सत्यार्थ देखिए :—

"यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।"

—(यजु० ३१।१४, अथर्व० ७।५।४, ऋ० १०।९०।६)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती :—"(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन परमात्मना (हविषा) होतुमादातुमर्हेण (देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (अतन्वत) तन्वते विस्तृणन्ति (वसन्तः) पूर्वाह्णः (अस्य) यज्ञस्य (आसीत्) अस्ति (आज्यम्) (ग्रीष्मः) मध्याह्नः (इध्मः) प्रदीपकः (शरत्) अर्द्धरात्रः (हविः) होतव्यं द्रव्यम्।"

भावार्थ :—यदा वाह्यसामग्र्यभावे विद्वांसो सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादि काल एव साधनरूपेण कल्पनीयः।

पदार्थ :—हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं। (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) पूर्वाह्ण काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्मः) मध्याह्न काल (इध्मः) ईन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है; ऐसा जानो।

भावार्थ :—जब वाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासना रूप मानस ज्ञानयज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधन रूप से कल्पना करने चाहिएं।"५१

---

५०. शुक्ल यजुर्वेद संस्कार भाष्येण सहितस्य ३१-३५ अध्यायाः, पृष्ठ ९ (राजनगर सोसाइटी, अहमदाबाद ७ द्वारा प्रकाशित, स० २०२२ वि०)
५१. "यजुर्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ७४३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस मंत्र का पूर्वार्ध अथर्व० ७।५।४ में भी पाया जाता है।

इस पर **श्री सायणाचार्य** का भाष्य देखिए :—

"दीव्यन्तीति देवा यजमाना:, पुरुषेण हविषा, यज्ञं पुरुषमेधाख्यं विस्तारितवन्त:। एवं पुरुषहविष्कयज्ञ इति यदस्ति, तस्मादोजीय अतिशयेनोजस्वि सारवदस्ति नु, विद्यते खलु, यद्विहव्येन विगत हविष्केण ज्ञानयज्ञेनेजिर इष्टवन्त:।"

भावार्थ :—देव का अर्थ यजमान है। उन्होंने पुरुष रूपी हवि से जो यज्ञ किया, उससे तो विना ही हवि के किया गया यज्ञ उत्तम है।"

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी :—पौराणिक होते हुए भी वाजसनेय संहिता में पुरुषमेध प्रकरण का अर्थ और कुछ मानते हैं* अत: यह दोषारोपण भी व्यर्थ सिद्ध हुआ और 'सरिता' के लेखक की वेदानभिज्ञता प्रकट हुई।

पृष्ठ ५३—"अथर्ववेद में मांस और शराब ऐसे प्रयुक्त हुए हैं कि उनसे तात्कालिक समाज में दोनों के मान्यता प्राप्त स्वरूप का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। साधारण बातचीत में उपमाएँ देने में ये दोनों सामान्यतया प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ 'तुम्हारा मन जैसे मांस में, जैसे शराब में रमता है, वैसे ही तेरा मन बच्चे में भी रमे'। (अथर्व० ६।७०।१)

समीक्षा :—अथर्ववेद में मांस, शराब से उपमा देने का तात्पर्य तो यह नहीं है कि इनके सेवन का आदेश है। देखिए पूरा मंत्र—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मन:।

इसमें मांस, शराब और द्यूत क्रीड़ा तीनों को एक कोटि में रखकर निन्दनीय व वर्जनीय बताया गया है।

श्री ग्रिफिथ साहब ऋग्वेद मं० १० सू० ३४ मं० १३ का अंग्रेजी अनुवाद करते समय अथर्व० ६।७०।१ का उद्धरण देते हुए शराब को बुरा बतलाते हैं :— "Its (of flesh) is disapproved as in a passage of the Atharva Veda where meat is classed with Sura of intoxicating liquor as a bad thing."

'वैदिक एज'। (Vedic age) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के कुख्यात लेखक ने भी "Drink is condemned as leading to quarrels and as seducing men from the path of virtue like dicing and meat eating."

—(Atharva-vi-70-1 and Vedic Age, PP. 457-458, First edition in 1951 London.)

यह लिखकर स्वीकार किया है कि जुआ और मांस-भक्षण की तरह मद्यपान धर्म पथ से हटाने वाला और लड़ाई-झगड़े में प्रवृत्त करने वाला है।

---

*"वैदिक साहित्य" पृष्ठ ३६०,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी—जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जुआ है उसी प्रकार पुरुष का मन स्त्री में (निहन्यते) निःसन्देह मारा जाता है। अर्थात् जिन व्यवहारों से मनुष्य का मन गिर जाता है, मारा जाता है या पतित हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं—मांस भक्षण, सुरापान, जुआ खेलना और व्यभिचार करना। इनसे मनुष्य पतित होता है इस कारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह 'वर्ग का निषेध' होने के कारण इनमें से किसी एक का पूर्ण निषेध करने से सब अन्यों का निषेध स्वयं हो जाता है। देखिए एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व । ऋग्वेद १०।३४।१३.

"जूआ मत खेल, खेती कर" इस मंत्र में जूआ मत खेल—यह पूर्ण निषेध है, यह जूआ पूर्वोक्त मांस वर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध होता है तो तत्सम अन्य जो-जो उस वर्ग में परिगणित हों उन सबका निषेध स्वयं हो जाता है, इस पद्धति से पूर्वोक्त चारों का निषेध एकदम हो गया।..."[५२]

अतः इस मंत्र से मांस, मद्य, द्यूतक्रीड़ा तीनों का निषेध होता है।

अथर्व १८।४।२० का पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

"अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवाँनां हतभागा इह स्थ।"

इसमें 'मांस' शब्द देख कर लेखक को भ्रम हो गया।

पं० क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी : "(अपूपान्) अपूपों (शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूए, पूड़ी आदि) वाला, (मांसवान्) मननसाधक पदार्थों वाला (अर्थात् बुद्धि-वर्धक जैसे मीठे फल, बादाम, अक्षोट आदि वस्तुओं वाला) (चरुः) चरु (स्थालीपाक) (इह) यहाँ (वेदी पर) (आसीदतु) आवे। (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले (तुम लोगों) को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहाँ पर (स्थ) हो।

भावार्थ :—यजमान को योग्य है कि विद्वानों को सत्कारपूर्वक बुलाकर शुद्ध, सुगन्धित, पुष्टिकारक मोहनभोग, मालपूए आदि पदार्थों के स्थालीपाक से यज्ञ करे।

[पाद-टिप्पणी में]—(मांसवान्) अ० ६।६।(३) ५। मनेर्दीर्घश्च। उ० ३।६४ मन्माने—सप्रत्यो दीर्घश्च। मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन्त्सीदतीति वा—निरु० ४।३। मननसाधकेन बुद्धिवर्द्धकवस्तुना युक्तः।..."[५३]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ : "(अपूपवान् मांसवान् चरुः इत्यादि) अपूप वाला और मांस=गूदेवाला चरु यहाँ रखा जाय। (देवानां)

५२. **"गोमेध" (पूर्वार्ध) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ६४-६५**

५३. **"अथर्ववेद भाष्यम्" अष्टादशं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ, पृष्ठ ६४-६५.**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देवों के निमित्त (ये) जो लोग (हुतभागः) उनके प्राप्त होने योग्य अंशों का प्रदान करते (स्थ) हैं उन (लोककृतः) लोक व्यवस्थापक पुरुषों और (पथि-कृतः) मार्ग निर्माण करने वाले उपकारी पुरुषों को (यजामहे) हम उक्त पदार्थ प्रदान करें।"

"मांसं वै पुरीषम् । श० ८।६।२।१४। मांसं सादनं । श० ८।१।४।५। एतद् ह वै परममन्नाद्यं यन्मांसम् । श० ११।७।१।३, अन्नम् उ पशोर्मांसम् । श० ७।५।२।४२"

अपूपम्—इन्द्रियमपूपः । ऐ० २।२४॥

चरु—ओदनो हि चरुः । श० ५।४।२।१। । परमेष्ठी वा एष यदोदनः । तै० १। ७।१०। ६ । प्रजापतिर्वा ओदनः । श० १३।३।६।७॥ रेतो वा ओदनः । श० १३।१। १।४॥......इस सारे प्रकरण में सब पदार्थ सात्त्विक ही हैं इसलिए 'मांसं' शब्द से गोश्त का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत रसीले गुद्देदार सर्वश्रेष्ठ अन्न खाद्य ही को बतलाया है।"[५४]

पौराणिक पं० श्रीराम शर्मा आचार्य :—पिसे गेहूँ और प्राणिज द्रव्य से संयुक्त ओदन रूप चरु पश्चिम में रखा जाय। इस संस्कार किये गये प्रेत के लिए स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।"[५५]

सायण भाष्य के आधार पर अनुवाद करते हुए भी पौराणिक पंडित ने मांस आदि का वर्णन नहीं किया है।

अथर्ववेद १८।४।४० पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥

श्री पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी : "[हे पितृगण !] (यम्) जिस (मन्थम्) मथने से प्राप्त हुए पदार्थ [नवनीत आदि] और (यम्) जिस (ओदनम्) भात आदि [सुसंस्कृत भोजन] को (ते) तेरे लिए और (यत्) जिस (मांसम्) मनन साधक वस्तु [बुद्धिवर्धक मीठे फल, बादाम, अक्षोट के गूदे, मींग] को (ते) तेरे लिए (निपृणामि) मैं भेंट करता हूँ। (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिए (स्वधा-वन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] सींचने वाले (सन्तु) होवें।

भावार्थ—गृहस्थ लोग विद्वान् गुणी माता पिता आदि बड़ों की सेवा घृत दुग्ध आदि से किया करें। जिससे वे पितर लोग बलवान् रहकर उत्तम-उत्तम कर्म करने में समर्थ होवें।[५६]

---

५४. "अथर्व संहिता भाषाभाष्य" चतुर्थखण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १०७-१०८.
५५. "अथर्ववेद (सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित) द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण पृष्ठ ८२२-८२३
५६. "अथर्ववेद भाष्यम्" अष्टादशं काण्डम्, पृष्ठ ३५११-३५१२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ :—"हे पुरुष ! मैं परमेश्वर (यं) जिस (मन्थम्) मथे हुए दही को (यम् ओदनम्) और भात को और (यन् मांसम्) जिस मनचाहे परम अन्न, फल आदि गूदेदार पदार्थ को (ते) तेरे लिए (निपृणामि) क्षुधा तृप्ति के निमित्त प्रदान करता हूँ (ते) वे समस्त पदार्थ (ते) तेरे लिए (स्वधावन्तः) अपने शरीरों को पुष्टि देने वाले, स्वभाव से शरीर योग्य, अन्न से बने, (मधुमतः) मधुर रस वाले और (घृतश्चुतः) घृत के समान तेज, वीर्य के देने वाले (सन्तु) हों।"[५७]

यदि 'मांस' शब्द ही रहने दिया जाय तब दूसरा अर्थ होगा:—

पं० प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड): "(यं ते मन्थम्) हे जीव ! तेरे शरीर में जिस मन्थनीय रक्त को (यमोदनम्) जिस शुक्ररूप सार पदार्थ को (यन्ते मांसम्) तथा जिस मांस को (निपृणामि) यथास्थान आवश्यकतानुसार नियुक्त करता हूँ। अतः उनके पोषण के वास्ते (ते स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतवन्तः) वे अन्नवाले रसवाले और स्नेहवाले पदार्थ (ते सन्तु) तेरे लिए हैं तू उनका उपयोग कर।

शिक्षा—मनुष्य के शरीर में रक्त, शुक्र और मांस ये तीन धातुएँ विशेषतः जीवनधारण के निमित्त हैं। इनके पोषणार्थ उत्तम अन्न रस और स्नेह वाले पदार्थों को सेवन करना चाहिए।"[५८]

अथर्ववेद १२।२।७ का पूरा मंत्र और सत्यार्थः—

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स धर्ममिन्धां परमे सधस्थे॥

पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी : "(यः) जिस (क्रव्यात्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापक पुरुष] ने (नः) हमारे (गृहम्) घर में (प्रविवेश) प्रवेश किया है [सो] (इमम्) इस (इतरम्) दूसरे [उससे भिन्न शुभगुणी] (जातवेदसम्) ज्ञानवान् राजा को (पश्यन्) देखता हुआ (पितृयज्ञाय) पितरों [रक्षक विद्वानों] के सत्कार के लिए (तम्) उस [दुष्ट] को (दूरम्) दूर (हरामि) भेजता हूँ और (सः) वह [राजा] (परमे) बड़े उत्कृष्ट (सधस्थे) समाज में (धर्मम्) यज्ञ को (इन्धाम्) प्रकाशित करे।

भावार्थ—प्रजागण चतुर नीतिज्ञ राजा के सहाय से क्रूर सन्तापकारी जन को निकाल देवे, जिससे सत् पुरुषों के सद्गुण संसार में फैलें और विजय पाने से राजा की कीर्ति बढ़े।"[५९]

यही मंत्र ऋग्वेद मं० १० सूक्त १६, मंत्र १० में भी आया है।

---

५७. **"अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य" चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२०**
५८. **"यमपितृपरिचय" प्रथम संस्करण पृष्ठ २०८**
५९. **"अथर्ववेद भाष्यम्" द्वादशकाण्डम्, प्रथमावृत्तौ. पृष्ठ २७३६-२७३७**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० प्रियरत्नजी आर्ष अनुसन्धानकर्त्ता (स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्त्तण्ड):—(यः क्रव्यादग्निर्वो गृहं प्रविवेश) हे प्रेतहारो ! जो शवदहनाग्नि तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हुई है (इममितरं जातवेदसं पश्यम्) मैं इस दूसरी अग्नि को प्रयुक्त करता हुआ—होमाहुति द्वारा सम्पादन करता हुआ (तं देवं हरामि पितृयज्ञाय) उस क्रव्याद शवगन्धाग्नि को पृथक् करता हूँ जिससे आपका प्राण-सञ्चार सुखमय हो सके (स परमे सधस्थे घर्ममिन्वात्) वह शवगन्धाग्नि ऊपर आकाश सूर्य को लक्ष्य करके व्याप्त हो जावे।

शिक्षा—चिताग्नि में होमाहुति देना प्रेतहारों के भीतर घुसी शवगन्धाग्नि के सम्पर्क को हटाती है जिससे उनके जीवन प्राण में खराबी नहीं आती किन्तु सूक्ष्म होकर ऊपर आकाश में शवगन्ध छिन्नभिन्न हो जाती है।"[६०]

अतः अथर्ववेद में मांस-भक्षण की चर्चा नहीं है।

पृष्ठ ५३-५४:—'शतपथ ब्राह्मण' में गोमेध यज्ञ का वर्णन है…। शतपथ ब्राह्मण (३-१-२-२१) में पुरोहितों के इस पारस्परिक विवाद पर कि मांस बैल का खाना चाहिए या गाय का, याज्ञवल्क्य निर्णय देते हैं, दोनों में से जो नरम हो, खा लेना चाहिए।

समीक्षा—अन्न को 'गोमेध' शतपथ में कहा गया है जिसकी चर्चा पीछे हो चुकी है।

शतपथ ब्राह्मण में प्रक्षेप :—

"ब्राह्मणों में बहुत प्रक्षेप भी है। कात्यायन श्रौत ७।५३ पर टीका लिखता हुआ याज्ञिकदेव शतपथ ब्राह्मण ३।१।२।२१ के विषय में लिखता है कि याज्ञवल्क्य की बछड़े के मांस को खाने की इच्छा को कहने वाला ब्राह्मण वाक्य धर्म के विरुद्ध है। अथवा यह किसी का मिलाया हुआ है।"[६१]

श्री शिवस्वामी सरस्वती जी महाराज (प० शिव शर्मा जी महोपदेशक):—

"कात्यायन श्रौत सूत्र का टीकाकार ७।५।३ की टीका करते हुए लिखता है कि—शतपथ ३।१।२।२१ के विषय में याज्ञवल्क्य के बछड़े के मांस खाने वाला ब्राह्मण वाक्य धर्म विरुद्ध है। किसी का मिलाया हुआ है। वह वाक्य यह है—"तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो अश्नाम्येवाहमंसलं चेद् भवतीति। ३।१।२।३१ पृष्ठ १२९ (भाषा छोड़ता हूँ)।"[६२]

---

६०. "यम-पितृपरिचय" पृष्ठ ६०

६१. पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० कृत "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" भाग द्वितीय "ब्राह्मण और आरण्यक" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७२ [सन् १९२७ ई० लाहौर संस्करण]

६२. "शास्त्रार्थ महारथी" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्त्तण्ड भी प्रक्षेप मानते हैं ।*

यदि इस स्थल को क्षेपक न माना जाय तब इसका अर्थ कुछ और ही होगा :—

'शतपथ ब्राह्मण' का पूरा स्थल :—

"…स धेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धेन्वनडुहौवाऽइदं सर्व्वं विभृतस्ते देवा अब्रुवन्धेन्वनडुहौ वाऽइदं सर्वं विभृतो हन्त यदन्येषां वयसां वीर्यं तद्धेन्वनडुहयोर्दधामेति स यदन्येषां वयसां वीर्यमासीत्तद्धेन्वनडुहयोरदधुस्तस्माद्धेनुश्चैवानड्वांश्च भूयिष्ठं भुंक्तस्तद्धैतत्सर्वाश्यम्मिव यो धेन्वनडुहयोरश्नीयादन्तगतिरिवतंत ँहाद्भुतमभिजनितोर्जायायै गर्भं निरवधीदिति पापमकदिति पापी कीर्तिस्तस्माद्धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्तदुहोवाच याज्ञवल्क्योऽश्नाम्येवाह मंसलं चेद्भवतीति ।"

—[शतपथ ब्रा० ३ कां० १ प्र० २ ब्रा० २१ कं०]*

अर्थ—"यह (यजमान) गाय का और बैल का न खावे । गाय और बैल ही इस संसार का धारण करते हैं । देवताओं ने भी कहा कि गाय और बैल ही इस संसार को धारण करते हैं । ओ हो ! जो दूसरे पक्षियों का पराक्रम गाय व बैल में स्थापन करता हूँ तब जो दूसरे पक्षियों का पराक्रम था वह उन्होंने गाय और बैल में डाल दिया । इसलिए गाय व बैल सबसे अधिक खाते हैं । वह सचमुच सर्वभक्षी है, जो गाय व बैल को खा जाय । यह बड़ा अद्भुत कार्य है कि स्त्री में गर्भ धारण करवाया । पापी की कीर्ति है इसलिए गाय व बैल का न खाये । इस पर याज्ञवल्क्य बोले कि यदि वह मोटे कंधेवाला (बलवर्धक) होगा तो मैं खाऊँगा ।"+

यह शाब्दिक अनुवाद है । यहाँ अध्याहार द्वारा 'मांस' शब्द समझा जाता है ।

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री इसका अनुवाद करते हुए बैल का मांस खाना मानते हैं ।[६३]

'शतपथ ब्राह्मण' ३।१।२।२१ का स्पष्टीकरण :—

पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार विद्यामार्त्तण्ड लिखते हैं :—

"इसका शब्दार्थ इस प्रकार है—वह (यजमान) गाय का और बैल का न खावे ।…इस पर याज्ञवल्क्य बोले मैं तो खाऊँगा यदि वह बलबर्धक होगा ।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सारे सन्दर्भ में मांस का शब्द कहीं नहीं, यह मांस शब्द कहाँ से आ टपका ।

---

*"वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८५

+"शतपथ ब्राह्मण श्रीमत्त्रयीभाष्यकार सायणाचार्य विरचित वेदार्थ प्रकाशाख्य भाष्य समेतम् । तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम काण्डात्मक, द्वितीयो भागः पृष्ठ १३ [सन् १९४० ई० में श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण बम्बई द्वारा प्रकाशित]

६३. "भारतीय संस्कृति का इतिहास" पृष्ट ४०२ [सन् १९५८ ई० रस्तोगी एण्ड कम्पनी मेरठ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अब यदि अव्याहार द्वारा मांस शब्द लाना ही है तो इस पर एक बड़ा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मांस के रूप में तो गाय बैल एक से हैं इसमें स्त्रीलिंग-पुल्लिग का भेद क्या ?

अब थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जावे कि गोमांस के स्वाद के विशेषज्ञ गाय और बैल के मांस में कोई भेद कर सकते हैं तो भी 'गव्यम् मांसम् नाश्नीयात्' कहने से काम चल सकता था। यह 'धेन्वै अनडुहश्च' गाय का और बैल का दोनों अलग-अलग क्यों कहे गये ?

इससे स्पष्ट पता लगता है कि इस वाक्य के समझने में भयङ्कर भूल हुई है।

इस वाक्य के समझने के लिए पहिले इसका प्रसंग देखना होगा। यह सोमयाग में पढ़ा हुआ वाक्य है। उपवास के प्रसंग में शतपथ के आरम्भ में भी कहा गया है कि उपवास का सम्बन्ध खाने न खाने से कुछ नहीं। उपवास का अर्थ तो हाज़री देना है। सो यज्ञ में जब कोई देवताओं की सेवा में हाज़िर हो उनके उप अर्थात् समीप बस रहा हो उस समय उनको खिलाये बिना खाना अर्थात् यज्ञ समाप्ति से पहिले खाना देवों का अपमान है। इस पर प्रश्न उठा कि यदि बिल्कुल भूखा रहेगा तो यज्ञ कैसे करेगा ? सो कुछ खाना तो अवश्य चाहिए सो जो खाया भी न खाये के बराबर हो अर्थात् जिसकी हवि ग्रहण नहीं करते वह पदार्थ अर्थात् कोई जंगली फल वा कन्द खा ले जिससे यज्ञ भी होता रहे और देवों का अपमान भी न हो।

वही बात यहाँ दोहराई गई कि गाय का अर्थात् दूध के बने पदार्थ मक्खन, मलाई, दही, मावा आदि न खावे तथा बैल का अर्थात् खेतों से उत्पन्न पदार्थ न खावे। इस पर याज्ञवल्क्य बोले कि सोमयाग लम्बा यज्ञ है इसलिए यदि दुर्बलता अनुभव हो तो कोई पुष्टिकारक पदार्थ जो भारी न हो थोड़ा सा खाने से काम दे जावे खा लेने में कोई हर्ज नहीं। जहाँ वाक्य में मांस का गन्ध भी नहीं वहाँ मांस का शब्द घुसेड़ना फिर स्त्रीलिंग पुल्लिग गाय बैल दोनों के पृथक् ग्रहण का कोई तात्पर्य न हो वह अर्थ कैसे ठीक हो सकता है ? बलिहारी है इस बुद्धि की ! भला हम रोज़ बोलचाल में यही व्यवहार देखते हैं। जब कोई लड़की ससुराल में जावे और उस घर के लोग शिष्टाचारवश आग्रह करने लगें कि भोजन खा लीजिए तो उस समय प्रायः कहा जाता है कि भाई, बेटी का खाने का धर्म नहीं, हम बेटी का नहीं खाते तो क्या वहाँ यह अर्थ लिया जायगा कि हम बेटी का मांस नहीं खाते ?

इस प्रसंग में 'ऐतरेय ब्राह्मण' का एक प्रकरण और लीजिए।

सर्वाभिर्वा एव देवताभिरालब्धो भवति यो दीक्षितो भवति तस्मादाहुर्न दीक्षितस्याश्नीयादिति। स यदग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतानिति। वपायै यजति सर्वाभ्य एव तद्देवताभ्यां यजमानम् प्रमुञ्चति तस्मादाहुर-शितव्यं वपायां हुतायां यजमानो हि स तर्हि भवति।

—"ऐतरेय ६ खण्ड, ९ अध्याय"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो सोमयाग में दीक्षित होता है, वह अपने आपको सम्पूर्ण देवताओं के समर्पण कर देता है। इसलिए दीक्षित का न खावे सो वह जब 'अग्नीषोमावमुञ्चतम् गृभीतान्' इस याज्या द्वारा वपाहोम, अर्थात् विश्वविद्यालय में शारीरिक व्यायाम द्वारा सारी चर्वी शरीर के सुडौल बनाने तथा मस्तिष्क निर्माण में लगे। व्यर्थ शरीर में मोटापन उत्पन्न न करे इसका पूर्ण प्रवन्ध कर लेता है तव वह सब देवताओं के बन्धन से मुक्त हो जाता है उनकी सेवा में कृतकृत्य हो जाता है उसके पश्चात् उसकी दशा साधारण यजमान की हो जाती है। इसलिए वपाहोम के पश्चात् दीक्षित के घर का भी खा लेना चाहिए। यहाँ शब्द है 'दीक्षितस्य नाश्नीयात्' हम यहाँ इस नकली सायण से पूछना चाहते हैं कि यहाँ 'दीक्षितस्य मांसं नाश्नीयात्' इस प्रकार मांस का अध्याहार क्यों नहीं किया गया ? यहाँ तो यह हज़रत लिखते हैं कि 'दीक्षितस्य गृहे नाश्नीयात्' सो यह क्या विचित्र लीला है ! 'धेन्वै अनडुहश्च' के सम्बन्ध में तो 'मांसम्' आ गया और दीक्षित के सम्बन्ध में 'गृहे'। इसी को देखकर महाभारत में कहा है कि "धूर्त्तैः प्रवर्त्तितम् चक्रम्।"

हमने नकली सायण इसलिए कहा कि परम विद्वान् सायण न ऐसी मूर्खता कर सकता है न ऐसी धूर्त्तता। आर्य जाति उठ ! वेद को इन धूर्तों से बचा।"[६४]

प्रसिद्ध पौराणिक पं० दीनानाथ जी शास्त्री 'शतपथ में पुरोहित का गवाशन निर्मूल' शीर्षक देकर लिखते हैं :—"···जब कि इस कण्डिका में 'मांस' का नाम नहीं ; तव इस प्रकार का अर्थ प्रतिपक्षी कैसे कर सकते हैं ? अथवा वह अर्थ माना भी जावे ; किन्तु जब श्रुति गाय वा वृषभ के अशन का निषेध उपपत्ति देकर कर रही है, वैसे व्यक्ति को गर्भ-हत्यारा, सर्वभक्षी और पापी कहती है, तो गाय-बैल के खाने का तो प्रतिपक्षी के अनुसार भी निषेध सिद्ध हो गया। इसी को अनुसृत करके 'कात्यायन श्रौतसूत्र' में भी कहा है—"धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्' (७।२।२२) इसका अर्थ कर्कभाष्य में इस प्रकार किया है—"धेन्वडुहयोमांसं नाशितव्यम्" तव यह जो वादी ने प्रश्न उठाया है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए वा गाय का—यह तो वात गलत तथा उसकी गढ़ी हुई निकली।

यहाँ प्रकरण ही भिन्न है। श्री सायणाचार्य ने उसे स्पष्ट कर दिया है। वह यह है कि जब यजमान क्षौर कराकर स्नान करके वस्त्र पहिरे, तव अध्वर्यु उसका शाला में प्रवेश कराये; तब प्रवेशकर्त्ता यज्ञ दीक्षा की पूर्त्यर्थ उपवास करे ; तब गोदुग्ध से निर्मित मलाई-रबड़ी आदि तथा बैल से कृष्ट अन्नादि न खावे। यहाँ

---

६४. "किसकी सेना में भरती होंगे ? कृष्ण की या कंस की" पृष्ठ २७ से २६ तक [सन् १६५३ ई०, प्रभाताश्रम कार्यालय, डा० जानी, जि० मेरठ द्वारा प्रकाशित]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रीसायण के शब्द यह हैं—

'अस्मापि (शालाप्रवेश-कर्तुः। अशनकालत्वाद् अत्र अशने कञ्चिद् नियममाह—धेन्वै-धेनोः क्षीरादिकम्' अनडुहसम्बन्धि कर्षणसाध्यमित्यर्थः, तदुभयं नाश्नीयात्। ...तद् अश्नतः सर्वाशिनं भवति, तस्य च जाया गर्भ-सम्भवे सति तत् सर्वाशिनं तं रेतोरूपेण परिणतं गर्भं हिंस्यात् तत् पापकीर्तिः स्यात्। तद् उभयोः (धेन्वनडुहयोः) (पायसम्) (च) नाश्नीयात्। तत् याज्ञवल्क्य पक्षमाह चेत् यसमाद् उभया-[धेन्वनडुहा-] न्नाशने शरीरम् अंसलं [बलवद्] भवति, तस्मात् तयोरन्नमश्नीयामेव'।"

उक्त कण्डिका में 'धेन्वै' में षष्ठी अर्थ में चतुर्थी [२।३।६२ इस कात्यायन के वार्तिक से] है ; यहाँ द्वितीया नहीं है, जोकि प्रतिपक्षी द्वितीया का अर्थ करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि यहाँ याज्ञवल्क्य का गोदुग्ध से निष्पन्न पायस आदि तथा बैल से कृष्ट अन्न का अपने लिए खाना कहा है जो शाला प्रवेश के लिए निषिद्ध था; तब याज्ञवल्क्य के ऊपर भी कोई दोष नहीं पड़ता।..."६५

पं० जयदेव जो वेदाचार्य एम० ए०, का भी विचार पं० बुद्धदेव जी विद्यमार्तण्ड व पं० दीनानाथ शास्त्री के सदृश है* अतः 'शतपथ ब्राह्मण' से 'गोमांस भक्षण' सिद्ध करना भी लेखक का वृथा प्रयास सिद्ध हो गया।

पृष्ठ ५४—"वेदों के एक पुराने भाष्यकार महीधर ने अपने भाष्य में लिखा है कि गोमेध यज्ञ में मारी गाय के रक्त व हड्डी से दूध और कपूर बन जाते हैं...।"

समीक्षा—'महीधर' एक वाममार्गी वाराणसी का निवासी था जिसने यजुर्वेद का अश्लील तथा असंगत भाष्य किया है, क्योंकि वेदों में गोहत्या का सर्वथा निषेध है। दूध व कपूर बन जाने की बात असंगत, तर्कहीन तथा प्रमत्त प्रलाप ही है। वेद में आया है—

"**यजमानस्य पशून्पाहि**" (यजु० १।१) = यजमान (यज्ञ करने वाले) के पशुओं की रक्षा कर।

"**द्विपादव चतुष्पात्पाहि**" (यजु० १४।८) = हे प्रभो! आप द्विपाद् (मानव) व पशुओं की रक्षा कीजिए।

"**शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे**—[यजु० ३६।८]

"वह परमात्मा (नः) हमारे लिए (शं) कल्याणकारी हो और (द्विपदे) दो पगवाले मानवों व पक्षियों तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले पशुओं के लिए (शं) कल्याण-कारी हो।

ऋ० १०।८७।१६; ८।१०१।१५; अथर्व० १०।१।२६; यजु० १३।४६; ३०।१८ आदि मंत्रों में स्पष्ट गोहत्या का निषेध है।

---

६५. "**श्रीसनातनधर्मालोक** (६) पृष्ठ ३७७, ३७८ [सं० २०१६ **प्रथम संस्करण, दिल्ली**]

*"**वेद और मांस विधान" पृष्ठ ३८ से ४० तक।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ ५४— "निरुक्त के प्रथम अध्याय से हमें एक और परस्पर विरोधी एवं आत्म व लोकप्रबन्धक बात पता चलती है, वहाँ एक वेद विरोधी कहता है, "वेद और उसके विधान सदोष हैं क्योंकि जब यज्ञ में पशु मारा जाता है तो जो मंत्र तब पढ़ा जाता है उसका अर्थ होता है—'हे खड्ग, इस पशु को मत मार।"

इस आक्षेप का उत्तर देते हुए वेदों के मर्मज्ञ यास्क ने लिखा है :

आम्नायवचनादहिंसा प्रतीयेत (वेदों का आदेश ऐसा ही है, अतः यह अहिंसा ही है),······उक्त स्थल पर भाष्य करते हुए छज्जूराम शास्त्री, विद्यासागर ने प्राचीन उक्ति उद्धृत की है; "या वेद विहिता हिंसा न सा हिंसा प्रकीर्तिता, अर्थात् जो वेदों में कत्ल व गारत है, उसे कत्ल व गारत नहीं कहा जा सकता।"

समीक्षा—लेखक ने निरुक्त के स्थल को छल कपट के साथ प्रदर्शित करने का कुप्रयास किया है। कौत्स जैसा वेदविरोधी आक्षेप कर रहा है और यास्क ने उसका समाधान किया है। उसने यह आरोप लगाया है कि यजु० ६।१५, यजु० ४।१ के मंत्र असंगत अर्थ वाले हैं। जैसे, यज्ञकर्ता पशु को काटता हुआ कहता है 'ओषधे त्रायस्वैनं, स्वधिते मैनं हिंसीः' मंत्र का अर्थ तो यह प्रतीत होता है कि हे ओषधि ! तू इसकी रक्षा कर; और हे खड्ग ! तू इसको मत मार; परन्तु इसको उच्चारण करके पशु का पेट काटा जाता है। इस प्रकार अर्थ तथा क्रिया में परस्पर असमानता तथा विरोध होने के कारण पता लगता है कि वेद मंत्र अनर्थक हैं [निरुक्त अ० १,पाद ५]

कौत्स ने अपने काल की प्रथा के अनुसार आक्षेप किया कि हिंसा करता हुआ 'त्रायस्व तथा मा हिंसी' कहता है। इस पर यास्क ने सीधा उत्तर दिया—"जो यह कहा कि मंत्र असंगतार्थक हैं, सो वेद के वचन से वहाँ अहिंसा जाननी चाहिए।

यजु० ६।१५ के जिस मंत्र को बोलकर अश्व का पेट काटा जाता है, वह ठीक नहीं। वेद-वचन से जब स्पष्टतया अहिंसा की प्रतीति होती है, तो जो उसके विपरीत कर्म करता है वह दोषी है न कि वेद-मंत्र।

इसी प्रकार यजु० ४।१ में भी 'ओषधे त्रायस्व···' वचन आता है। प्राचीन ऋषियों ने इस वचन का विनियोग मुण्डन संस्कार में किया है। 'ओषधे त्रायस्व' का उच्चारण करके केशों को कुश-तृण से बांधा जाता है कि जब केश काटे जावें तो उस्तरा उन कुश-तृणों पर टिके और सिर में क्षत न हो।···वेद वचन से केशों के काटने को हिंसा नहीं समझना चाहिए।

पं० छज्जूराम शास्त्री का अनुवाद ठीक है क्योंकि वेद मंत्रों का तात्पर्य अहिंसा ही है। पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार' [६६]; स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्तण्ड',[६७];

---

६६. "वेदार्थ दीपक निरुक्तभाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७५-७६
६७. "निरुक्त सम्मर्शः" पृष्ठ ५२-५३ [प्रथम संस्करण, मार्च १९६६ ई०;]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० [६८] तथा पं० छज्जूराम शास्त्री + पं० भगीरथ शास्त्री [६९] प्रभृति भाष्यकारों व अनुवादकों ने ऐसा तात्पर्य लिखा है। अतः यह प्रयास भी व्यर्थ ही है।

पृष्ठ ५४ "बृहदारण्यकोपनिषद् (६-४-१८) में लिखा है : अथ य इच्छेत्पुत्रो मे······(अर्थात् जो यह चाहे कि मेरा पुत्र सभाओं में वाग्मी और सब वेदों में पारंगत तथा शतायु हो, उसे चाहिए कि वह अपने पुत्र को बैल वा सांड का मांस पकाकर घी और भात मिलाकर खिलाएँ)···

समीक्षा—बृहदारण्यकोपनिषद् से 'गोमांस'-भक्षण का वृथा प्रयासः—

"अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पंडितो विजिगीथः समितिंगमः शुश्रूपितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीत् सर्वमायुरियादिति मां सौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताामीश्वरी जनयित वा औक्षेण वार्षभेण वा।"—[बृहदारण्यकोपनिषद् ६।४।१८]

इसका वास्तविक अर्थ यों है—

(क) इसके वाद (य इच्छेत्) जो कोई इच्छा करे (मे पुत्रः पंडितः) मेरा पुत्र पंडित (विजिगीथः) विजयी (समिति गमः) सभाओं में जाने योग्य सभ्य (शुश्रूपितां) सुशिक्षित श्रवणेच्छाजनक (वाचं) वाणी का (भाषिता) बोलनेवाला (सर्वान्-वेदान् अनुब्रवीत्) सब वेदों को पढ़े पढ़ावे (सर्वं आयुः इयात्) सम्पूर्ण आयु को भोगे वा इस प्रकार [जायेत] उत्पन्न होवे [सर्पिष्मन्तम्] घृतयुक्त [माषौदनं] उड़द और चावल को [पाचयित्वा] पकवाकर [ऋषभेण] अष्टवर्गोक्त ऋषभक् नामक महौषधि के साथ [अश्नीयाताम्] स्त्री पुरुष खावें तो [इति] इस [औक्षेन] ऋषभक महौषधि के निषेक प्रयोग से [ईश्वरौ] दोनों समर्थ होते हुए वे अवश्य [वा] ऐसा [जनयतः] उत्पन्न करते हैं।"[७०]

(ख) "जो चाहे कि मेरा पुत्र पंडित हो, प्रख्यात हो, सभा सोसाइटियों में जाने वाला हो, प्रियवाणी बोलनेवाला हो, सब वेदों का ज्ञाता हो, पूरी आयु भोगे, तो माष अर्थात् उड़द के साथ चावल पकवाकर पति पत्नी दोनों खावें। ऐसा करने से वे दोनों ऐसा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं जो शरीर में बैल के समान और ज्ञान में ऋषियों के समान होता है। इस स्थल में 'मांसौदन' की जगह 'माषोदन' पाठ ठीक है क्योंकि इस सारे प्रकरण में चावल, घी, दही, तिल आदि का वर्णन है। दही, घी,

---

६८. "निरुक्त शास्त्रम्" भाषार्थ तथा भाषाभाष्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५३-५४

६९. "निरुक्तम्" पृष्ठ ४६-४७ [सन् १९६३ ई० प्रथम संस्करण, मेहरचन्द लक्ष्मणदास अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज, दिल्ली-६]

७०. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४५, ४६ में पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ, काशी का अर्थ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चावल, तिल आदि के सिलसिले में उड़द तो प्रकरणसंगत है, मांस सर्वथा असंगत है।[७१]

यहाँ पर 'मांसौदन' 'औक्ष्णेन' और 'ऋषभेण' इन पदों को देखकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं।

गर्भाधान के समय वैद्यक शास्त्र किन वस्तुओं के खाने तथा किन वस्तुओं के न खाने का विधान करता है।

'गर्भोपघातकरास्त्विमे भावाः···न रक्तानि बासांसि विभृयात् न मदकराणि चाद्यात् न अभ्यवहरेत् न यानमवरोहेत् न मांसमश्नीयात् सर्वेन्द्रियप्रतिकूलांश्च भावान् दूरतः परिवर्जयेत्। [चरक शा० स्थान अ० ४]

ये पदार्थ गर्भ के हानि करने वाले हैं—रक्त कपड़ा पहनना, मदकारक वस्तुओं का सेवन, मांस भक्षण, यान पर चढ़ना इसलिए गर्भाधान में इनका सेवन न करें।

ततो पराह्णे पुमान् मांसं ब्रह्मचारिणी तैलस्निग्धः सर्पिक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मांसं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहाराम् नारीमुपयाद्रात्रौ सामादिभि विश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यां दशम्यां द्वादश्यां च उपेयादिति पुत्रकामः। —[सुश्रुत, शरीराध्याय २]

अर्थ :—गर्भाधान करने वाला महीने भर तक ब्रह्मचारी रहे। पुरुष गर्भाधान के दिन अपराह्ण में घी से स्निग्ध, घी और दूध के साथ शाली चावल के भात को खाकर एक मास तक ब्रह्मचारिणी रहने वाली, तिल तैल से स्निग्ध, तैल और उड़द प्रधान आहार की हुई स्त्री को गर्भ की हानिकारक बातें समझा बुझा देने पर सब तरह से प्रेमोत्पादन करके चतुर्थी, षष्ठी, दशमी, द्वादशी में पुत्र की इच्छा से गमन करे।

चरक शा० स्थान० ८ में गर्भाधान में उड़द ही का उल्लेख है :—

"मधुरौषधसंस्कृताभ्यां घृतक्षीराभ्यां पुरुषं स्त्रियं तु तैलमाषाभ्याम् ॥"

अर्थात्—वर्गोक्त मधुर ओषधियों से संस्कार किये घृत और दुग्ध से पुरुष को, तैल और उड़द से स्त्री को गर्भाधान के योग्य करे।

"यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥"

—[अथर्व० ३ सू० २३ मंत्र ४]

अर्थ—वीर्य सेवन में समर्थ, श्रेष्ठ नर तू आरोग्यवर्द्धक ऋषभ के बीज की सहायता से पुत्रोत्पन्न कर और भविष्य में माता कही जाने वाली स्त्री को पुत्रवती और स्तनों में खूब दूध वाली होने दे।

---

७१. प० सत्यव्रतजी सिद्धान्तालंकार कृत "धारावाही हिन्दी में सचित्र एकादशोपनिषद्" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५०५।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

यहाँ स्पष्ट गर्भाधान के समय ऋषभक ओषधि का सेवन करने के लिए आदेश है, न कि बैल खाने का।

यहाँ "मांसौदन" शब्द नहीं, वरन् "माषौदन" है। एक बार अशुद्ध मुद्रित हो गया तो वैसा ही अशुद्ध मुद्रित होता रहा।

"माषौदन" के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के विचार :—

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ लिखते हैं :–"माषौदन" सबसे पहले एक महान् प्रमाद बहुत दिनों से चला आता हुआ प्रसिद्ध होता है। मांसौदन शब्द यहाँ नहीं चाहिए किन्तु "माषौदन" अर्थात् माषौदन के स्थान में मांसौदनम् लेखकों के भ्रम से वा किसी मांसप्रिय विद्वान् के कर्तव्य से उस प्रकार का परिवर्तन हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि श्रीमन्थ कर्म में दश प्रकार के अन्न के नाम आये हैं, वे ये हैं व्रीहि, यव, तिल, माष, अणु, प्रियंगु, गोधूम, मसूर, खल्व और खलकुल और इन दस अन्न और सर्वौषध को मिला कर मन्थ बनाया जाता है और उसके विधिपूर्वक ग्रहण से यहाँ तक फल कहा गया है कि सूखे वृक्ष के ऊपर भी यदि यह मन्थ रक्खा जावे, तो उसमें पत्ते लग जायें, इत्यादि वर्णन इसी उपनिषद् के पष्ठाध्याय के तृतीय ब्राह्मण में देखिए। यहाँ पर देखते हैं कि तिल शब्द के बाद माष शब्द आया है। इसी प्रकार "तिलौदन" के पश्चात् "माषौदन" आना चाहिये, न कि "मांसौदन' क्योंकि १७ वें खंड में तिलौदन शब्द आया है अतः १८ वें खंड में अवश्य "माषौदन"चाहिए। पूर्व में भी क्रम देखते हैं कि क्षीरौदन, दध्योदन और उदोदन शब्द आए हैं। अब क्षीर, दधि और अन्न को त्याग झट मांस का विधान कर देना यह असंगत प्रतीत होता है, अतः यहाँ माषौदन ही शब्द है, यह सिद्ध होता है "माष" उड़द को कहते हैं।"[७२]

पं० जे० पी० चौधरी जी काव्यतीर्थ लिखते हैं :—"गर्भाधान के समय "माषौदन" चाहिए, न कि मांसौदन जो; गर्भाधान में सर्वथा वर्जनीय है। पुस्तक में एक बार जो अशुद्ध छप गया तो छप गया, कोई उस पर ध्यान देकर शुद्ध नहीं कर देता।[७३]

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ से दिनांक ३०।१०।१९४३ ई० को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा स्वर्ण जयन्ती, लाहौर के अवसर पर मैंने इस सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने कहा था कि मेरा सिद्धान्त है कि वहाँ पाठभेद है, मांस नहीं वरन्, माष, शब्द है।

उसी पर दिनांक ३१।१०।१९४३ को स्वामी अभेदानन्द जी महाराज व विद्या-

---

७२. "बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यम्" पृष्ठ ७७६ (संवत् १९९८ में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित प्रकाशित, प्रथमावृत्तिः)

७३. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४५

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वारिधि व्याकरणाचार्य विजयमित्र जी शास्त्री, महोपदेशक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर के सामने वैदिक गवेषक पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० से इस सम्बन्ध में पूछा, तो उन्होंने भी कहा था कि वहाँ माष शब्द चाहिए।

पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार भूतपूर्व आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी लिखते हैं—इसका अर्थ कई विद्वानों ने यह किया है कि माता पिता माँस और चावल पकवा कर औक्षण से वा आर्षभ से घृत सहित खायें अर्थात् बैल का मांस खायें। इसका अर्थ करने का कारण यह है कि 'मांसौदन' शब्द में मांस शब्द आया है। परन्तु इस सारे प्रकरण को आगे-पीछे से देखें तो क्या माँस की बात ठीक जंचती है? सारे प्रकरण को पढ़ जायें तो तिल चावल घृत के सिवाय किसी और वस्तु का कहीं जिक्र नहीं, एकाएक मांस शब्द आ गया है। असल में 'माष' की जगह किसी लेखक की गलती से 'मांस' शब्द लिखा गया है। उस समय के लेखकों की गलतियाँ आजकल छापेखाने के भूतों की गलतियाँ (Printers devil) कहातीं हैं। चावल के साथ माष अर्थात् उड़द की संगति तो स्पष्ट है, मांस की कोई संगति नहीं बैठती। शुभ कार्यों में आजकल की परम्परा तिल चावल माष के मिलने की है तिल चावल के साथ माँस मिलने की तुक कहाँ बैठती है!"[७४]

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी लिखते हैं:—जो यह चाहे कि मेरा पुत्र पंडित ही वह मांस, 'माष—चिकने मांसल—उड़दों के साथ पके हुए चावलों को उक्ष वा ऋषभ औषध के रस के साथ खाये और जो उक्त वाक्य में मांस शब्द की आशंका की जाती है, जो किसी जीव के मांस का अर्थ देता है औषध का नहीं इसका उत्तर यह है कि इससे पूर्व प्रकरण अन्न या औषध का ही है।"[७५]

आचार्य रामदेवजी गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी भी उक्ष और ऋषभ काकड़ासींगी नाम महौषधि का नाम लिखते हैं।[७६]

पांडेय पं० श्रीरामनारायणदत्त जी शास्त्री 'राम': अपने "वेदों और उपनिषदों में मांसभक्षण और अश्लीलता नहीं है" शीर्षक लेख में लिखते हैं—

"उदाहरण के लिए बृहदारण्यक उपनिषद् के ६।४।१८ वें मंत्र पर दृष्टिपात कीजिए। वहाँ सुयोग्य और विद्वान् पुत्र उत्पन्न करने के लिए दम्पती को औक्ष अथवा आर्षभ के साथ पकायी हुई खिचड़ी खाने का आदेश किया गया है। प्रायः मूंग या उड़द की दाल मिला कर ही खिचड़ी बनती है। मूंग की खिचड़ी को 'मुद्गौदन' और उड़दमिश्रित खिचड़ी को माषौदन कहते हैं। इस माषौदन को संभवतः किन्हीं मांस-

७४. "धारावाही हिन्दी में सचित्र एकादशोपनिषद्" प्रथमसंस्करण, भूमिका पृष्ठ १३।
७५. "वैदिक काल का इतिहास" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ५५
७६. "भारतवर्ष का इतिहास वैदिक तथा आर्य पर्व तृतीयावृत्ति पृष्ठ १८८।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रेमियों ने मांसौदन कर दिया है। यदि किसी का यही आग्रह है कि वहाँ 'मांसौदन ही पाठ है तो भी उसका अर्थ वहाँ औषध या अन्न ही है। यह बात पहले के विवेचन के अनुसार माननी हीं होगी। औक्ष या आर्षभमिश्रित ओदन के लिए माषौदन या मांसौदन नाम आया है यही भावना प्रकरण संगत हैं।[७७]

पं बुद्धदेवजी विद्यालंकार, विद्यामार्त्तण्ड—इसमें 'ऋषभक्' का अर्थ कन्द आदि किया है।[७८]

पं० बदरीदत्त जोशी लिखते हैं :—"यहाँ किसी-किसी पुस्तक में "मांसौदन" ऐसा पाठ है पर हमें वह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पूर्व में सर्वत्र अन्नों का ही उल्लेख है। किसी मांस-प्रिय व्यक्ति के कर्तव्य से परिवर्तन हुआ है। माप शब्द उरद की दाल का पर्यायवाची है। यजुर्वेद में भी अठारहवें अध्याय में अन्नों का वर्णन है वहाँ पर भी 'माष' शब्द आया है।"[७९]

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज—"माषौदन—कहा जा चुका है कि माषौदन का पाठभेद अनेक ग्रन्थों में मांसौदन है। सिवाय इसके कि मांस शब्द के यह अर्थ कर लिये जावें कि (मनः सीदत्यस्मिन् स मांसः) जिससे मन प्रसन्न हो वह मांस है और इस दृष्टि से माषौदन ही मांसौदन है। और कोई प्रकरण गोश्त के अर्थों में मांस के प्रयोग का वहाँ नहीं है। इसलिए कि जिन दस ओषधियों से मंथ और ओदन बनाने का विधान है उनके नाम स्वयं उपनिषद् में दे दिये गये हैं—(१) धान, (२) जौ, (३) तिल, (४) माष, (५) बाजरा, (६) कंगनी, (७) गेहूँ, (८) मसूर, (९) खल्व (१०) कुरथी, (बृ० ३-३-१३)।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि इन ओषधियों में गिनती करते हुए तिल के बाद 'माष ही है इसलिए सतरहवीं कण्डिका में तिलौदन का और उसके बाद अठारवीं कंडिका हैं माषौदन का उल्लेख है। अन्यथा मांस का तो वहाँ जैसा कहा जा चुका है कोई प्रकरण ही नहीं।"[८०]

पं० दीनानाथ जी शर्मा शास्त्री सारस्वत विद्यावागीश, विद्याभूषण,

---

७७. "मासिकपत्र "कल्याण" गोरखपुर का "उपनिषद् अङ्क" वर्ष २३ जनवरी १९४९ ई० संख्या १ पृष्ठ २२७।

७८. "किसकी सेना में भरती होंगे ! कृष्ण की या कंस की" पृष्ठ ३० से ३४ तक

७९. "बृहदारण्यकोपनिषद्" पृष्ठ २९३, (सन् १९३४ ई० में पं० गणपति शर्मा, शर्मा मैशीन प्रिंटिंग प्रेस, मुरादाबाद द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

८०. "बृहदारण्यकोपनिषद्" पृष्ठ ६१८ (संवत् २००६ वि० में सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, पाटौदी हाऊस, दरियागंज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्यानिधि अपने "बृहदारण्यक और वृषभ मांसभक्षण" शीर्षक लेख[८१] में लिखते हैं—पहले एक वेद के वक्ता के लिए ओदन का दूध में, दो वेदों के वक्ता के लिए ओदन का दही में 'तीन वेदों के वक्ता के लिए ओदन का गंगा आदि के उदक में पकाना कहा है। यह तरल तथा परस्पर सम्वद्ध वस्तुएँ हैं। १७वीं कंडिका में पुत्री: पण्डितता बुद्धिमत्ता सयानापन के लिए तिल और तंडुल का पकाना कहा है। वहाँ पर तिल धान्यविशेष है। तब १८ वीं कंडिका में पुत्र को पंडित बुद्धिमान् सयाना बनाने के लिए मांस भला प्रकृत कैसे हो सकता है ? पहले दूध, दही तथा जल परस्पर सम्वद्ध थे, पर यहाँ तिल के साथ मांस का क्या सम्बन्ध ! मांस भी यहाँ साहचर्यानुसार कोई धान्य ही होना चाहिए। औक्षेण, आर्षभेण यह पद तृतीयान्त है इनका विशेष्य मांस यहाँ बन भी नहीं सकता क्योंकि यहाँ मांस शब्द में तृतीया नहीं। विशेषण विशेष्य की विभक्ति समान होने का नियम होता है और उस विशेष्य का अन्य पद के साथ समास भी संभव नहीं।

अन्य यह भी विचारणीय है कि 'मांसौदनम्' यहाँ पर समाहार द्वन्द्व है। मांस का मांस अर्थ करने पर यह समाहार द्वन्द्व नहीं हो सकता। तिलौदनम् में तो 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यंजनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्'। (पा० २।४।१२)। इस सूत्र से व्रीहियवम् की भाँति दोनों के धान्य होने से समाहार द्वन्द्व हुआ है पर मांसौदनम् में मांस कोई धान्य नहीं अतः वह समाहार द्वन्द्व नहीं हो सकता। पर यदि वहाँ मांस कोई धान्यविशेष सिद्ध हो जावे तो ठीक संगति लग जावेगी।

वह संगति इस प्रकार है, 'अतो माषान्नमेवैतद् मांसार्थे ब्रह्मणा स्मृतम्···यथा बलिष्ठं मांसत्वाद् माषान्नमपि तत्समम्। सौगन्धिकं च स्वादिष्ठं मधुरं द्रव्यभेदतः' (प्रजापति स्मृति १५२-१५३)। इस प्रमाण से मांस का अर्थ माष धान्य ही होता है। क्योंकि मांसल पदार्थ भी अर्शआद्यच् से "मांस" शब्द से कहे जा सकते हैं। इसलिए स्वयं वृहदारण्यक में दश ग्राम्य धान्यों की गणना करते हुए, व्रीहियवाः तिलमाशाः ६।३।१३ यहां तिल के बाद, माष लिया है। पूर्वोक्त समाहार द्वन्द्व की वैकल्पिकता के कारण यहाँ एकवचन न होकर इतरेतर योग में बहुवचन हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थल मांसौदनम् में भी समझ लेना चाहिए। तब यहाँ माँस से माष का ग्रहण होने से सब संगतियाँ लग जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि माष और ओदन घृताक्त पकाकर उन्हें उक्षा वा ऋषभक के साथ पति पत्नी खावें तो पूर्वोक्त गुणवाला लड़का उत्पन्न होगा। माष की खीर बड़ी पौष्टिक वा वाजीकरण होती है तब उसका वर्णन यहाँ पुत्रोत्पत्त्यर्थ प्रकट भी है।

यहाँ, उक्षा और ऋषभक् के अर्थ पर भी विचारना चाहिए। औक्षेण वा ऋषभेण वा दो बार कहे हुए इस वा शब्द से तो यह सिद्ध ही है कि ये दोनों भिन्न वस्तुएँ

---

८१. **मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी का वेदांक वर्ष ७ नवम्बर-दिसम्बर १९५४ ई० अंक १-२ पृष्ठ १३४ से १३६ तक।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। बैल अर्थ करने पर संगति नहीं लगती। आयुर्वेद (उपवेद) में उक्षा सोम औषधि का नाम है।

श्री सायणाचार्य ने भी ऋग्वेद सं० १।१६४।४३ में लिखा है—

'सोम उक्षाऽभवत्।'

ऋषभ, ऋषभक ओषधि का नाम है। ये दोनों ही ओषधियाँ वाजीकरण होने से बलवर्धन, वीर्योत्पादन और मेधावी पुत्र के उत्पादन की शक्ति रखती हैं। सो उक्त घृताक्त माषौदन उक्त औषधियों में से एक के चाहे सोमलता के, वह न मिले तो ऋषभक के स्वरस के साथ देने से वैसा पुत्र हो सकता है, यह उक्त कंडिका का अर्थ है। इस अर्थ में दुष्क्रम दोष भी नहीं रहता।

यदि यहाँ बैल के माँस से ही वेदवक्ता बालक की उत्पत्ति का अर्थ इष्ट होता तो उसके भक्षक मुसलमान वा ईसाई ही सर्ववेदवक्ता सिद्ध होते, भारतीय नहीं, परन्तु यह अनुभव से विरुद्ध भी है। अतः यह अर्थ सर्वथा नहीं।"

पं० धर्मदेवजी 'विद्यामार्तण्ड':—"यहाँ 'माँसौदनम्'के स्थान पर शुद्ध पाठ 'माषौदानम् है। ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है क्योंकि इससे पूर्व के सन्दर्भों में क्षीरौदनम् दध्योदनम्-उदौदनम्' ये पाठ हैं अथवा चावल के साथ दूध दही-पानीं को पका कर खाने का विधान है। अतः ऊपर के वाक्य में भी माषौदनम् यही पाठ प्रकरण संगत और सर्वथा उचित है।......"[८२]

प्रो० रामसिंह एम० ए०, महामंत्री, सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति, दिल्ली "चिरकाल से 'मांसोदनम्' शब्द से एक महान् प्रमाद और घोर विभ्रम उत्पन्न हो गया है। यहाँ प्रकरण वश 'मांसोदनन्' शब्द **नहीं आना चाहिए। वास्तव में यह शब्द 'माषौदनम्'** होना ही युक्तियुक्त है। लेखकों के प्रमाद से अथवा किसी मांसप्रिय महानुभाव ने ही यह परिवर्तन करने की कृपा की है। वैद्यक-चरक ग्रन्थ में 'माषौदन' वाजीकरण औषध के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'औक्षेण आर्षभेण वा का अर्थ स्पष्ट है कि भोजन तैयार करने का यह सब कार्य ऋषि कृत विधि से ही करे।"[८३]

प्राध्यापक श्री जयदेव जी वेदाचार्य, एम० ए०:—"...कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि यहाँ मांस शब्द के स्थान पर शुद्ध पाठ 'माष' उड़द है जो सर्वथा उचित है। वैद्यक ग्रन्थों में गर्भिणी के लिए उड़द के प्रयोग का भी अनेकत्र विधान है जैसे सुश्रुत के शरीराध्याय दो में।......"[८४]

---

८२. "गोरक्षा परम कत्तव्य और गोहत्या महापाप" पृष्ठ ४२ तुलना करो 'वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८१

८३. "श्री पिण्डीदास ज्ञानी कृत "गा-विश्वकी-माँ"प्रथमावृत्ति, 'दो शब्द' पृष्ठ ६

८४. "वेद में मांस विधान" पृष्ठ ३०(फरवरी १९६८ई० वैदिक संस्थान, नजीबाबाद जि० बिजनौर, उ० प्र० द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० सत्यानन्दजी शास्त्री, एम० ए०:—"यहाँ पर मांसाहार के पृष्ठ-पोषकों का दावा है कि 'बृहदारण्यकोपनिषद्' का वचन स्पष्ट ही 'उक्षा' अथवा 'ऋषम' मानो बैल के मांस के साथ पकाये गये चावलों को खाने का विधान करता है। हमारा उत्तर यह है कि "मांसौदनम्" शब्द "माँसपलाव" (Meat Plao) का पर्याय नहीं अपितु 'उड़द पलावो' का पर्याय है। किसी ने भूल से इस उद्धरण में मकार के बाद आये आकार को सानुनासिक कर दिया है। यहाँ शब्द "मांसौदनम्' न होकर "माषौदनम्" है।......[८५]

यहाँ पन्द्रह पौराणिक व आर्य समाजी विद्वान् 'माषौदन" शुद्ध पाठ मानते हैं। अतः उपनिषद् से 'गोमांस भक्षण' सिद्ध करना भी आपका वृथा प्रयास सिद्ध हुआ।

गृह्यसूत्रों से 'मधुपर्क' में गाय व बैल मांस की चर्चा—पृष्ठ ५५ में—लेखक ने आपस्तम्ब गृ०सू० 'मानव गृ. सू. १।६।१६ से २२ आश्वलायन गृ० सू० व पारस्कर गृ० सूत्र से 'मधुपर्क' में गोमांस का मिश्रण मान कर आक्षेप किया है।

समीक्षाः—

विवाहसंस्कार में 'मधुपर्क' एक आवश्यक सामान होता है जिससे वर का स्वागत किया जाता है। यह 'मधुपर्क' क्या है? इसमें क्या-क्या सामान डाला जाता है? कतिपय पाश्चात्य विद्वान् व भारतीय विद्वान् 'मधुपर्क' में मांस डालना आवश्यक समझते हैं। कई 'गृह्यसूत्रों' में भी ऐसा विधान है यह कई विद्वानों का मत है। इन सभी बातों पर विचार किया जा रहा है।

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती महाराज लिखते हैं:'मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उसका परिमाण १२(बारह) तोले दही में ४ तोले शहद, अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाना चाहिए; और वह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।[८६]

उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर, भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रक्खे, रखके—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि॥

इस मंत्र को एक-एक वार बोलके एक-एक भाग में से वर थोड़ा-थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे। जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देदे वा जल में डाल देवे।[८७]

---

८५. "क्या प्राचीन आर्य लोग मांसाहारी थे? पृष्ठ २७

८६. 'संस्कार विधि' विवाह प्रकरणम् की पादटिप्पणी।

८७. वही, पृष्ठ १८३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की दृष्टिमें 'मधुपर्क' शुद्ध है, उसमें मांस डालने का विधान नहीं है।

अन्य प्रमाण:—

डा. राजबली पाण्डेय एम. ए., डी. लिट्. लिखते हैं:—'श्वसुर वर का जो प्रथम सत्कार करता है, वह है मधुपर्क देना। यह अत्यन्त दुर्लभ सम्मान था, जो समाज के विशिष्ट व्यक्तियों तथा सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्बन्धियों के लिए सुरक्षित था।······आचमनके लिए जल तथा काँसेके ढक्कनसे ढके हुए काँसेके एक बरतनमें दही, घृत तथा मधुका घोल प्रस्तुत करता है।'[८८]

'आहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं काँस्ये काँस्येन--' [पारस्कर गृह्यसूत्र १। ३। ५]

यहाँ भी 'मधुपर्क—दधि, मधु, घृत, कांसे के पात्रसे ढका हुआ' कहा है। 'दधनि मध्वानीय सर्पिर्वा मध्वलाभे—'

[आश्वलायन गृह्यसूत्र १, २४, ५, ६]

दही और मधु मिलावे, मधुके अभावमें घृत।

'कांस्ये चमसे वा सदध्निमध्वासिच्य वर्षीयसापिधायाचमनीयप्रथमैः प्रतिपद्यन्ते ॥'—

[वाराह गृह्यसूत्रम् खण्ड १२, सू. ४]

डा. उदयनारायण सिंह कृत अनुवाद:—'कांसेके कटोरेमें या प्रणीता के समान चमसपात्रमें मधुपर्क और दही मिलाके एक बड़े पात्र से ढांप कर आचमनीय जल आदि सहित पूजाके पास पूजक आवे।'[८९]

दधिमध्विति संसृज्य कांस्येन वर्षीयसापिधाय
कूर्चाभ्यां परिगृह्य मधुपर्क इति प्राह ॥१०॥
'त्रिवृतमेके घृतं च ॥११॥ पाङ्क्तमेके धानाः सक्तूंश्च ॥१२॥'—

[आपस्तम्बीय गृह्यसूत्रम् १३ खंड]

'ब्राह्मणसर्वस्व' पत्र के सम्पादक वेद व्याख्याता पं० **भीमसेन शर्मा इटावा:**—

फिर पूजक दही और सहत को मिलाके कांसे के बड़े पात्र से ढांपकर दोनों ओर से कुंभ के आसनों से पकड़के (मधुपर्कः) ऐसा कहे ॥१०॥ किन्हीं आचार्यों का मत है कि मधुपर्क में घृत भी हो तो दही शहत घी तीन हों ॥११॥ तथा किन्हीं

---

८८ 'हिन्दू संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, पृष्ठ २६८ (सन् १९४७ ई. में चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. 1 द्वारा प्रकाशित)

८९. 'वाराह गृह्यसूत्रम्' पृष्ठ ३४(सन् १९३४ ई में शास्त्र प्रकाश भवन, मधुरापुर. डा० विद्दुपुर बाजार, ज़ि० मुजफ्फरपुर (बिहार) द्वारा प्रकाशित)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कल्पसूत्रकारों की राय है कि भूने जौ और सत्तू मिलके पाँच वस्तु मधुपर्क में हों ॥ १२ ॥[६०]

बौधायनगृह्य सू० (१।२।६-१०) सूत्र ६ में मधु लाने की बात का उल्लेख है। दशवें सूत्र में मधु में दही वा दूध मिलाने से 'द्विवृत्', घृत मिलाने से 'त्रिवृत्' पहले दूध मिलाया हो तो दही मिलाने से अथवा पहले दही मिलाया हो तो दूध मिलाने से 'चतुर्वृत्' और जल मिलाने पर 'पाङ्क्त' कहलाता है।[६१]

जैमिनीय गृह्यसूत्र १:१६

तयोर्दधिमधुसंनिहिते भवतो, दध्ना चेत्।
दधिमन्थोऽद्भिश्चेद उद्मन्थः पयसा चेत् पयस्यः ॥

अर्थात्—उनमें दही और मधु मिले रहते हैं। यदि दही हो तो 'दधिमंथ' कहलाता है। यदि पानी हो तो 'उद्मन्थ' कहलाता है और यदि दूध (पयस्) हो तो 'पयस्य' कहलाता है।[६२]

हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र १।१२।१०—

'प्रक्षालन के लिए जल अर्पण और फिर मधुपर्क, जिसमें तीन या पांच वस्तुएं हैं—दधि, मधु, घृत—उसमें आपः (जल) और सक्तु (सत्तु) भी मिलाया जा सकता है।'[६३]

तन्त्रसार (चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी का नवम्बर १९३८ संस्करण, प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ ५३)

आज्यं दधिमधुमिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः।

मधुपर्क में घृत, दधि और मधु का मिश्रण ही बुद्धिमानों ने बताया है। तन्त्रसार का यही उद्धरण 'शब्दकल्पद्रुम' (चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी द्वारा प्रकाशित १९६१ संस्करण, भाग ३, पृष्ठ ५९९, कालम २) में भी मधुपर्क के अर्थ में उद्धृत किया गया है।[६४]

'शब्दकल्पद्रुम' में वहीं पर मधुपर्क के अर्थ में कालिका पुराण, अध्याय ७ से निम्न उद्धरण दिया है—

---

९०. सन् १९०५ में पं० सत्यव्रत शर्मा द्विवेदी द्वारा वेद प्रकाश मुद्रणालय में मुद्रित व प्रकाशित [सनातन धर्म पुस्तकालय, इटावा द्वारा प्राप्य] 'आपस्तम्बीयं गृह्यसूत्रम्' भाषावृत्तियुतम् पृष्ठ ३३

९१. 'प्राचीन भारत गोमांस–एक समीक्षा' पृष्ठ ९६ [सन् १९७० ई० गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

९२. वही, पृष्ठ ९६-९७

९३. वही, पृष्ठ ९७

९४. वही, पृष्ठ ९५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितैताभिस्तु पञ्चभिः।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोपतुष्टये ॥

दही, घी, दूध, मधु, (शहद) और मिश्री—इन पांचों का मधुपर्क बनता है जो सब देवों को तुष्ट करने वाला है।[६५]

ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता, (स्मृति—सन्दर्भ, चतुर्थभाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४३०, प्रकाशक—मनसुखराय मोर, नं० ५ क्लाइव रो, कलकत्ता), अष्टम अध्याय, श्लोक संख्या २०२।

कांस्यपात्रे समायुक्तं दधिमधुघृतैर्युतम्।
मधुपर्कः स विज्ञेयो मित्रस्य त्वा प्रतीक्षणी ॥

दधि, मधु और घृत से युक्त कांस्यपात्र में बना हुआ पदार्थ 'मधुपर्क' कहा जाता है।[६६]

'कौशिक सूत्र० (९२) ने ९ प्रकार के मिश्रण की चर्चा की है—ब्राह्म (मधु एवं दही) ऐन्द्र (पायसका), सौम्य (दही एवं घृत) पौष्ण (घृत एवं मट्ठा)सारस्वत (दूध एवं घृत) मौसल (आसव एवं घृत, इनका प्रयोग केवल सौत्रामणी एवं राजसूय यज्ञों में होता है)' वारुण (तिल का तेल एवं घृत), पारिव्राजक (तिल तेल एवं खली)।[६७]

पं० सुब्रह्मण्यजी लिखते हैं :—

"ततः कांस्यपात्रे दधिमधुघृतं संसृज्य, संस्थाप्य, वर्षीयसा कांस्यपात्रेणापिधाय दद्यात्। ततोऽर्चकः पूर्वोक्तमधुपर्कपात्रं गृहीत्वा मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति वदेत्।"[६८]

श्री शुकदेव वर्मा कृत अनुवाद :—"पूजक एक कांस्यपात्र में रखे हुए दही मधु और घी को दूसरे कांस्यपात्र से ढांककर 'मधुपर्को०' वाक्य को पढ़ता हुआ पूज्य को दे देवे।"

इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह कहना उचित है कि 'मधुपर्क' निरामिष होता है।

पूर्वपक्ष—मधुपर्क में मांस नहीं पड़ता है। कुछ स्थलों में 'मधुपर्क' में 'मांस' की चर्चा है :—

---

६५. वही, पृष्ठ ९५
६६. वही, पृष्ठ ९५
६७. डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे एम० ए० एल० एल० एम० कृत 'धर्मशास्त्र का इतिहास' [प्रथम भाग] पृष्ठ ३१० [हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]
६८. 'गोभिलीयगृह्यकर्म प्रकाशिका' पृष्ठ ४७८ [सन् १९३२ ई० में, प्रथमावृत्ति]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(क) **"नामांसो मधुपर्को भवति भवति"**—

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२६)

(ख) **"नत्त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्"**— (पारस्करगृह्यसूत्र १।३:२९)

लेकिन मधुपर्क तो विना मांस ही नहीं होता है।

(ग) **"मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।**

अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ।।" (मनुस्मृति ५।४१)

"मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए [अन्य किसी कार्य में नहीं], ऐसा मनु ने कहा है।"

समीक्षा—

(क) वेदों में कहीं भी मांस-भक्षण का विधान नहीं है। अतः वेदों के सामने गृह्यसूत्र प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। मधुपर्क, यज्ञ या किसी भी कार्य में पशु-वध करना महान् पाप है।

'नामांसो मधुपर्को भवति" 'नामांसो' शब्द का सन्धि-विच्छेद 'ना आमांसो' भी होता है। इस प्रकार सन्धि-विच्छेद करने पर 'आमांसो' में 'आ' का प्रयोग 'अमरकोष' ३।३।२३९ के अनुसार निम्न अर्थों में ही हो सकता है—

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे। (औरकोश ३।३।२३९)

इसका पदच्छेद—आङ् ईषत् अर्थे अभिव्याप्तौ सीमा—अर्थे धातुयोगजे। अर्थात्—'आ' का प्रयोग 'थोड़ा' अर्थ में, अभिव्याप्त (व्यापक होना) अर्थ में, 'सीमा' अर्थ में और 'धातुयोग' में होता है। 'नामांसो मधुपर्को भवति' में 'आमांसो' का अर्थ 'मांस से व्याप्त' होगा और उसका तात्पर्य 'मांस सहित' ही बनता है। पूरे सूत्र का अर्थ होगा—'मधुपर्को आमांसो न भवति—मधुपर्क आमांसो' (मांस से व्याप्त—मांस सहित नहीं होता, अर्थात् 'मधुपर्क मांसरहित होता है।'[६९]

पौराणिकों के विचार—

पं० दीनानाथजी शास्त्री लिखते हैं :—यह भी बात ठीक मालूम नहीं होती, मधुपर्क में दधि, घृत, मधु वा चीनी यह मीठी वस्तुएँ होती हैं, यहाँ गोमांस का काम भी क्या ? यह मधुपर्क वर की पूजा होती है। जब वह मधुपर्क ही सारा नहीं खाता; तो एक समूची गाय ही कैसे निगल लेगा ? यह तो फिर 'चर्मतन्तो-महिषीं हन्ति' चमड़े की तन्तु के लिए समूची भैंस को मारना होगा, १००-२०० आदमियों का भक्ष्य एक वर कैसे खावेगा ? और यह भी सुना जाता है कि मांस की वस्तुएँ नमकीन ही बनती हैं, तो मधुपेय के समय नमक वा मांस का काम ही क्या ?

'समांसोऽर्घ' का हमारे विचार में 'मधुपर्क-रूप अर्घ समांस हो' का भाव मधुपर्क की मांसलता से है अर्थात् उस समय के दधि, मधु, नवनीत वा घृत मांसल (पौष्टिक) हों, निस्सार न हों, सपरेटे के दूध के न हों; शहद भी बनावटी चीनी

६९. **'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ १०८।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदि का न हो । गृहस्थाश्रम में सारसहित (पौष्टिक) दधि, मधु, घृत का सेवन वर को करना चाहिए ।'[१००]

पं० माधवाचार्य शास्त्री :—

"...वानप्रस्थ और संन्यस्त व्यक्तियों को केवल मधुपर्क और अन्य मान्य अतिथियों को धारोष्ण पायस, खीर, सिखरन आदि पदार्थों सहित ही मधुपर्क दिया जाना चाहिए यह शास्त्राज्ञा है। तदनुसार यहाँ भी गृहस्थ वशिष्ठजी को धारोष्ण दुग्धसहित मधुपर्क प्रदान किया गया है और तृतीयाश्रमी जनकजी को केवल मधुपर्क मात्र दिया गया है यही उक्त प्रसंग के 'समांस' मधुपर्क दिए जाने का तात्पर्य है।[१०१]

(ख) पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रमाण पर विचार :

मधुपर्क ग्रहण कर लेने के पश्चात् गौ का प्रसंग इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि मधुपर्क में गोमांस की कोई संभावना नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र १-३-२५ से २९ तक ५ सूत्र प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। ये वाममार्गियों द्वारा मिश्रग हैं, क्योंकि मधुपर्क हो चुका, खा भी चुके, आगे गौ की प्रशंसा है कि यह गौ रुद्रों की माता है—वसुओं की पुत्री है और आदित्यों की बहिन है अमृत की नाभि है। यह ऋग्वेद का मंत्र है जिसमें गोहत्या का सर्वथा ही निषेध है। गौ की प्रशंसा है।

जब अर्घ्य पूजनीय राजादि ही निषेधकर्ता है, फिर भी यह कर्म करना आज्ञा-भंग पाप भी है।

कर्काचार्य, जयराम, हरिहर, भाष्यकार मधुपर्क में मांस मानते हैं पर कलि में, निषेध मानते हैं।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री, त्रयोदशतीर्थ, एम० ए०, पी० एच० डी० भूतपूर्व अध्यक्ष दयानन्द कालेज, कानपुर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"टि० (१) पारस्करगृह्यसूत्र के अनेक व्याख्याकारों ने यहाँ मांसयुक्त मधुपर्क का विधान माना है किन्तु पराशर और याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित निषेध वाक्यों से कलियुग में उसको वर्जित ही माना है।

निषेधवाक्य—

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतु । ॥ याज्ञवल्क्य ॥ (हरिहरभा०)

× × ×

यज्ञाधानं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥

॥ पराशर ॥ (गदाधर टी०)

---

१००. 'श्रीसनातनधर्मालोक (६), प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४३-४४४

१०१. मासिक पत्र 'लोकालोक' दिल्ली का 'शंका समाधानांक' वर्ष ४ पौष २०२१ अंक ११, पृष्ठ ३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(क) "नामांसो मधुपर्को भवति भवति"—

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२६)

(ख) "नत्त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्"— (पारस्करगृह्यसूत्र १।३:२९)

लेकिन मधुपर्क तो विना मांस ही नहीं होता है।

(ग) "मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।

अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥" (मनुस्मृति ५।४१)

"मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए [अन्य किसी कार्य में नहीं], ऐसा मनु ने कहा है।"

समीक्षा—

(क) वेदों में कहीं भी मांस-भक्षण का विधान नहीं है। अतः वेदों के सामने गृह्यसूत्र प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। मधुपर्क, यज्ञ या किसी भी कार्य में पशु-वध करना महान् पाप है।

'नामांसो मधुपर्को भवति' 'नामांसो' शब्द का सन्धि-विच्छेद 'ना आमांसो' भी होता है। इस प्रकार सन्धि-विच्छेद करने पर 'आमांसो' में 'आ' का प्रयोग 'अमरकोष' ३।३।२३९ के अनुसार निम्न अर्थों में ही हो सकता है—

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे। (औरकोश ३।३।२३९)

इसका पदच्छेद—आङ् ईषत् अर्थे अभिव्याप्तौ सीमा—अर्थे धातुयोगजे। अर्थात्—'आ' का प्रयोग 'थोड़ा' अर्थ में, अभिव्याप्त (व्यापक होना) अर्थ में, 'सीमा' अर्थ में और 'धातुयोग' में होता है। 'नामांसो मधुपर्को भवति' में 'आमांसो' का अर्थ 'मांस से व्याप्त' होगा और उसका तात्पर्य 'मांस सहित' ही बनता है। पूरे सूत्र का अर्थ होगा—'मधुपर्को आमांसो न भवति—मधुपर्क आमांसो' (मांस से व्याप्त–मांस सहित नहीं होता, अर्थात् 'मधुपर्क मांसरहित होता है।'[६६]

पौराणिकों के विचार—

पं० दीनानाथजी शास्त्री लिखते हैं:—यह भी बात ठीक मालूम नहीं होती, मधुपर्क में दधि, घृत, मधु वा चीनी यह मीठी वस्तुएँ होती हैं, यहाँ गोमांस का काम भी क्या? यह मधुपर्क वर की पूजा होती है। जब वह मधुपर्क ही सारा नहीं खाता; तो एक समूची गाय ही कैसे निगल लेगा? यह तो फिर 'चर्मतन्तो-महिषीं हन्ति' चमड़े की तन्तु के लिए समूची भैंस को मारना होगा, १००-२०० आदमियों का भक्ष्य एक वर कैसे खावेगा? और यह भी सुना जाता है कि मांस की वस्तुएँ नमकीन ही बनती हैं, तो मधुपेय के समय नमक वा मांस का काम ही क्या?

'समांसोऽर्घ' का हमारे विचार में 'मधुपर्क-रूप अर्थ समांस हो' का भाव मधु-पर्क की मांसलता से है अर्थात् उस समय के दधि, मधु, नवनीत वा घृत मांसल (पौष्टिक) हों, निस्सार न हों, सपरेटे के दूध के न हों; शहद भी बनावटी चीनी

६६. 'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ १०८।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदि का न हो। गृहस्थाश्रम में सारसहित (पौष्टिक) दधि, मधु, घृत का सेवन वर को करना चाहिए।'[१००]

पं० माधवाचार्य शास्त्री :—

"...वानप्रस्थ और संन्यस्त व्यक्तियों को केवल मधुपर्क और अन्य मान्य अतिथियों को धारोष्ण पायस, खीर, सिखरन आदि पदार्थों सहित ही मधुपर्क दिया जाना चाहिए यह शास्त्राज्ञा है। तदनुसार यहाँ भी गृहस्थ वशिष्ठजी को धारोष्ण दुग्धसहित मधुपर्क प्रदान किया गया है और तृतीयाश्रमी जनकजी को केवल मधुपर्क मात्र दिया गया है यही उक्त प्रसंग के 'समांस' मधुपर्क दिए जाने का तात्पर्य है।[१०१]

(ख) पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रमाण पर विचार :

मधुपर्क ग्रहण कर लेने के पश्चात् गौ का प्रसंग इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि मधुपर्क में गोमांस की कोई संभावना नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र १-३-२५ से २९ तक ५ सूत्र प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। ये वाममार्गियों द्वारा मिश्रण हैं, क्योंकि मधुपर्क हो चुका, खा भी चुके, आगे गौ की प्रशंसा है कि यह गौ रुद्रों की माता है—वसुओं की पुत्री है और आदित्यों की बहिन है अमृत की नाभि है। यह ऋग्वेद का मंत्र है जिसमें गोहत्या का सर्वथा ही निषेध है। गौ की प्रशंसा है।

जब अर्घ्य पूजनीय राजादि ही निषेधकर्ता है, फिर भी यह कर्म करना आज्ञा-भंग पाप भी है।

कर्काचार्य, जयराम, हरिहर, भाष्यकार मधुपर्क में मांस मानते हैं पर कलि में निषेध मानते हैं।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री, त्रयोदशतीर्थ, एम० ए०, पी० एच० डी० भूतपूर्व अध्यक्ष दयानन्द कालेज, कानपुर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"टि० (१) पारस्करगृह्यसूत्र के अनेक व्याख्याकारों ने यहाँ मांसयुक्त मधुपर्क का विधान माना है किन्तु पराशर और याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित निषेध वाक्यों से कलियुग में उसको वर्जित ही माना है।

निषेधवाक्य—

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतु। ॥ याज्ञवल्क्य ॥ (हरिहरभा०)

× × ×

यज्ञाधानं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत्॥

॥ पराशर ॥ (गदाधर टी०)

---

१००. 'श्रीसनातनधर्मालोक (६), प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४३-४४४

१०१. मासिक पत्र 'लोकालोक' दिल्ली का 'शंका समाधानांक' वर्ष ४ पौष २०२१ अंक ११, पृष्ठ ३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतः उक्त व्याख्या ही आचारानुकूल है और यही गोदान विधि है।[१०२]

पारस्कर गृह्यसूत्र १-३-५ के भाष्य में कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ, "दहि, घृत और शहद मिला हुआ मधुपर्क कांस्य के पात्र से ढका हुआ लावे" ऐसा कहते हैं।[१०३]

श्री शुकदेव वर्मा चौहान का भाषाभाष्य :—

'कांस्य के पात्र में दही सहत या गुड़ और घृत कांस्पयात्र से ढककर क्रमशः पूर्व पूर्व इन सब पदार्थों को रखे।[१०४]

जब सभी भाष्यकार मधुपर्क को मांसरहित मानते हैं तो पुनः उसी गृह्यसूत्र में मांसयुक्त मधुपर्क का बतलाना 'वदतो व्याघात' दोषयुक्त है। इससे तो पता चलता है कि 'पारस्कर गृ० सू० १-३-२६' प्रक्षिप्त है, क्योंकि एक ही लेखक परस्पर विरुद्ध बातें नहीं लिख सकता।

यदि 'दुर्जनतोषन्याय' से उसे प्रक्षिप्त न भी माना जाय तो उसका अर्थ यों हो सकता है :—

'पारस्कर गृह्यसूत्र के २६ वें सूत्र 'नत्वेवामांसोऽर्घ्यः स्यात्' का अर्थ भी 'नामांसो मधुपर्को भवति' की तरह दो प्रकार है—

(१) न तु एव अमांसो अर्घ्यः स्यात्

(२) न तु एव आमांसो अर्घ्यः स्यात्

पहले का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) अमांसः (मांसरहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। दूसरे अर्थ का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) आमांस (मांससहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। इन दोनों अर्थों की संगति तथा असंगतिका विवेचन तथा 'मांस का अर्थ गूदेदार फल का विवेचन आश्वलायन गृह्यसूत्र के अन्तर्गत हो चुका है।'[१०५]

मनुस्मृति ५।४१ पर विचार :—

मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही विद्वान् अपनी लेखनी से लिखकर उसके विरुद्ध उसी पुस्तक में लिखते हैं तो उसे कौन उसकी कृति मानेगा ?

---

१०२. 'पारस्कर गृह्यसूत्र' (हरिहर भाष्य हिन्दी व्याख्यासहित) प्रथमकाण्ड, पृष्ठ २५ (अगस्त सन् १९७० ई० में भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौड़ीगली, वाराणसी द्वारा प्रकाशित)

१०३. द्रष्टव्य 'पारस्कर गृह्यसूत्रम् (श्रीकर्कोपाध्याय, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ–प्रणीतम् भाष्यसमलंकृतम्) [सन् १९१७ ई० में गुजराती मुद्रणालय, बम्बई द्वारा मुद्रित प्रकाशित]

१०४. 'पारस्करगृह्यसूत्रम्' पृष्ठ २१ [सन् १९१४ ई० में तारा यन्त्रालय, वाराणसी में मुद्रित]

१०५. 'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ ११३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ११६-१२० में 'मधुपर्क' शब्द आया है। पं० कुल्लूक भट्ट इनके भाष्य में मांसयुक्त मधुपर्क नहीं लिखते हैं, परन्तु राजा राजेन्द्रलालमित्र प्रभृति को इसमें भी 'गोमांससहित मधुपर्क' अर्थ दिखाई देता है जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

पुनः—

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः।। ५-४१ ।।

'मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए और कहीं नहीं ऐसा मनु ने कहा है।'

इसके अन्तिम वाक्यांश 'इत्यब्रवीन्मनु :—इति अब्रवीत् मनु :—ऐसा मनु ने कहा''इस बात का द्योतक है कि ये वचन 'मनुस्मृति' के नहीं हैं। मनुस्मृति में दिये गए सभी विधान राजर्षि मनुजी के हैं, उसमें यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि यह मनु ने कहा है। और किसी ग्रन्थ में मनु के विधान का उदाहरण दिया जाय तो वहाँ ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसा मनु ने कहा है—मनु जी ने ऐसा विधान दिया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह वचन मनुस्मृति के अन्तर्गत मनु महाराज के द्वारा दिए गए विधान का नहीं है।

इसी ५ वें अध्याय के श्लोक ४५ से ५५ तक में मांसभक्षण का निषेध है। पुनः इसी अध्याय में विधान कैसे ?

सामवेद भाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी 'मनुस्मृति भाषानुवाद' में लिखते हैं :—

'२६ से ४२ तक १७ श्लोक निकालकर २५ वें से ४३ वें को मिलाकर पढ़िये तो प्रकरण ठीक मिल जाता है और इस मांस की विधि को मनु में मिलाने वाले ने ऐसी अधिकता से मिलाया है कि एक ही बात (श्राद्धादि न करके मांस न खावे) अनेक बार पिष्टपेषण करता ही जाता है। यह मांस भक्षण किसी कर्म में मनु का सम्मत नहीं है, इसका निषेध मनु ने स्वयं इसी अध्याय के ४३ वें से ५५ वें तक १३ श्लोकों में बड़े बलपूर्वक किया है और व्यौरेवार इसकी बुराई घिनौनापन दूषितता एवं पातता सब बतलाई है वे बुराइयें यज्ञ में कैसे हो सकती हैं। मनु जब मांस को राक्षसादि का भोजन मानते हैं, तो देवकार्य में कैसे ग्राह्य हो सकता है। ये श्लोक अवश्य प्रक्षिप्त हैं जैसा कि महाभारत, मोक्ष धर्मपर्व में कहा है कि—

सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः।।

धर्मात्मा मनु ने सब कर्म (वैश्वदेवादि) में अहिंसा ही कही थी परन्तु अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इच्छा से शास्त्राबाह्य यज्ञ वेदी पर लोग पशुओं को मारते हैं।"[१०६]

अतः 'मधुपर्क' में माँस नहीं डाला जाता ।

क्या 'उत्तररामचरित' नाटक में बछिया के वध की चर्चा है ?

पृष्ठ ५५-५६:—"...वैदिक कर्मकाण्ड के महाविद्वान् कुमारिल भट्ट के शिष्य महाकवि भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तररामचरित' के चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में लिखा है कि भगवान् (?)वाल्मीकि के आश्रम में भगवान् (?) वसिष्ठ पहुँचे तो दो वर्ष की गाय को कत्ल करके उनका सत्कार किया गया...।"

समीक्षा—वेदों के सामने नाटक का प्रमाण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, वाल्मीकीय रामायण से कई भिन्न कथाओं का वर्णन इस 'उत्तर रामचरित' में है जिसको कोई भी विद्वान् नहीं मानता है।

श्री मोतीलालजी जालान लिखते हैं—"...घटना-प्रसंग कल्पित है। अतः वाल्मीकि ऋषि द्वारा वसिष्ठ ऋषि को गोमांसयुक्त मधुपर्क दिलाना और उनके द्वारा स्वीकार करना भी कल्पित और मिथ्या है। अतः यह सिद्ध हुआ कि 'उत्तर रामचरित' नाटक में चतुर्थ अंक में गोहत्या करवा कर ताजा गोमांसयुक्त मधुपर्क की बात कल्पित और मिथ्या है। ऐतिहासिक सत्य नहीं है।"[१०७]

पं० दीनानाथजी शास्त्री—"...नाटक शास्त्रकोटि में नहीं आ सकता। तब उसका प्रामाण्य भी क्या हो ? इसके अतिरिक्त 'उत्तर रामचरित' में यद्यपि सीता-रामचरित्र हैं; तथापि उसमें वाल्मीकि-रामायण से भिन्न बहुत-सी बातें मन-कल्पित हैं।...

वस्तुतः यहाँ और रहस्य है, गाय का दूध प्रायः अतिथि के कार्य में लग जाने से वह वत्सतरी (बछिया) के लिए नहीं बचा होगा; इसलिए वह बेचारी भूख से बिलबिलाती होगी। यही 'वत्सतरी मड़मडायिता' से संकेत मिलता है सो अतिथ्यर्थ वत्सतरी-विशसन यहाँ भी हो जाता है। श्रीजनक ने क्षत्रिय होनेसे वा वानप्रस्थ होने से मुनि की गाय का दूध आदि स्वीकार नहीं किया; इसलिए वहाँ उसके लिए कहा है—'वत्सतरी विसर्जिता।'[१०८]

अतः आपका यह प्रयास भी व्यर्थ सिद्ध हुआ।

---

१०६. 'मनुस्मृति' पृष्ठ २६५ [गोयलब्रादर्स, थोक पुस्तकालय दरीबाकलां, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित] तुलना करो—मासिक पत्रिका 'तपोभूमि' मथुरा का 'शुद्ध मनुस्मृति अंक' वर्ष १४, जून १९६७ ई० अंक ५-६, पृष्ठ २९०-२९१

१०७ "प्राचीन भारत में गोमांस-एक समीक्षा" पृष्ठ १२४-१२५

१०८ "श्री सनातनधर्मालोक (६) पृष्ठ ४४१-४४२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या वाल्मीकि रामायण में मत्स्य, मांस, शराब की चर्चा है?

पृष्ठ ५६:—लेखक ने वा. रा. अयोध्याका० सर्ग ५२।८७; बालकाण्ड १४। ३१,३३,३६, उत्तरकांड ४२।१६-१७; अयो० सर्ग ५६।२३; अरण्यकांड सर्ग ४७।२३; अयो० ६१।५२, से मांस सिद्ध करने का प्रयास किया है।

समीक्षा—पीछे प्रवल पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर दिया गया है कि वेदों में मांस भक्षण की चर्चा नहीं है तब वाल्मीकि रामायण का प्रमाण प्रस्तुत करना मूर्खता है। आर्यसमाजी विद्वान् उन स्थलों को प्रक्षिप्त मानते हैं परन्तु पौराणिक (सनातन धर्मी) विद्वान् उनको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। अतः पौराणिक पंडितों की टीकाओं के आधार पर ही प्रदर्शित किया जाता है कि वाल्मीकि रामायण में मांस की चर्चा नहीं है।

"सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वाँ प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता॥"

—[वा० रा०, अयोध्या का० सर्ग ५२ श्लो०...८७]

भ्रष्ट अर्थः—"हे देवि! मैं अपनी इस नगरी को वापस आकर तुम्हारी शराब के हजारों घड़ों और मांस मिश्रित ओदन से पूजा करूंगी।"

सत्यार्थ :—"(जब भगवान् राम, सीता और लक्ष्मण निषादराज गुह द्वारा प्रदत्त नाव में बैठकर भगवती भागीरथी को पार कर रहे थे तब मध्यधारा में पहुँचने पर महाराणी सीता ने गंगा की प्रार्थना करते हुए कहा—

'देवि! पुनः अयोध्यापुरी को लौटने पर मैं सहस्रों देव दुर्लभ पदार्थों से तथा राजकीय भाग से रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्न के द्वारा आपकी पूजा करूँगी। आप मुझ पर प्रसन्न हो।'

टिप्पणी :—इस श्लोक में आए हुए 'सुराघटसहस्रेण' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सुरेषु देवेषु न घटन्ते तेन सहस्रसंख्याकसुरदुर्लभपदार्थेनेत्यर्थः।' 'मांस भूतौदनेन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए, 'मांसभूतौदनेन मा नास्ति अंशो राजाभगो यस्या सा एव भूः पृथ्वी च उत वस्त्रं च औदनं च एतेषां समाहारः, तेन च त्वां-यक्ष्ये।"

यह टीका गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा अनूदित व प्रकाशित से ली गई है।[१०९]

---

१०९. तुलना करो "पाक्षिक पत्र" "आर्य मार्तण्ड" अजमेर, वर्ष ५१ दिनाङ्क १ मार्च १९७३ ई० अङ्क २५, पृष्ठ १३, "देव दयानन्द की दिव्य देन" शीर्षक से श्री पिण्डी दास ज्ञानी का लेख।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के साथ सजने वाला नहीं हैं। यहाँ बकरों और सूअरों के भी मांस परोसे थे (६७) मिट्टी के खप्पर पर भूने मांस भी थे। (७०) **ये सब वर्णन मुनिभोजन के साथ तथा आश्रमजीवन के साथ मिलने-जुलने वाले नहीं हैं।"**[११५]

पृष्ठ ५६ :—"इसी रामायण के उत्तरकाण्ड, सर्ग ४२ से पता चलता है कि 'सीता को रामचन्द्र ने अपने हाथों गुड़ और घौ के फूलों से बनी शराब पिलाई (१८-१९)' तब सेवक राम के खाने के लिए तरह-तरह के मांस और मिष्टान्न ले आए (१९-२०)।"

समीक्षा :—उत्तरकाण्ड को विद्वान् वाल्मीकि ऋषि कृत नहीं मानते हैं। वे युद्धकाण्ड तक ही मानते हैं। अतः यह प्रक्षिप्त है, क्योंकि वनगमन के समय महाराजा दशरथ और महारानी कैकेयी के प्रति भगवान् रामचन्द्र जी क्या कहते हैं :—

"चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।"

—(वा० रा० अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लो० २९)

अर्थ : मैं राज्यभोग्योचित *वस्तुओं को छोड़कर मुनियों के समान मधु, कन्द, मूल एवं फलों से जीवन निर्वाह करता हुआ निर्जन वन में १४ वर्ष तक वास करूँगा।"

और भी कहा है—

"फलानि मूलानि च भक्षयन् वने
गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः॥"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ३४ श्लो० ५९)

---

११५. श्री वाल्मीकि प्रणीत श्रीरामायण महाकाव्य (तृतीय भाग) अयोध्या काण्ड, (उत्तरार्ध), (हिन्दी अनुवाद तथा निरीक्षण" पृष्ठ ३५० (सन् १९४६ ई० प्रथम संस्करण औंध)

*'आमिषम्' का तात्पर्य 'राजभोग्योचित पदार्थों' से है। 'मेदिनीकोष'में 'आमिषम्' का अर्थ 'राजभोग्यवस्तु' भी दिया है—"आकर्षणे ऽपि पुंसि स्यादामिषं पुंनपुंसकम्। भोग्य वस्तुनि संभोगे ऽप्युत्कोचे पलले ऽपि च। 'रामचन्द्र टीकाकार ने भी इसका यही अर्थ किया है। पूर्वापर विचार करने पर भी यहाँ 'आमिषम्' का अर्थ मांस करना उचित नहीं प्रतीत होता। पूर्ण प्रकरण (सर्ग १२) में जहाँ राम के लिए भोजन के पदार्थों का वर्णन आया है, वहाँ मांस का वर्णन नहीं किया गया। मांस अर्थ करने पर इससे उसका विरोध होगा।" (मासिक पत्रिका 'वेदवाणी' वर्ष १२, अङ्क ८, पृष्ठ २६०)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ : "नाना प्रकार के विचित्र वृक्षों से सुशोभित वन में प्रवेश करके वहाँ फल-मूल खाता हुआ तथा पर्वतों, नदियों एवं तालाबों को देखता हुआ मैं सुखपूर्वक रहूँगा । आप प्रसन्न एवं सुखी होवें ।"

पुनः मुनि भरद्वाज जी के प्रति भी भगवान् ने इसी वाक्य को कहा—

"धर्ममेव चरिष्यामः पत्रमूलफलाशनाः ।"

—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४ श्लो० १६)

अर्थ : "पत्र, मूल, फल आदि खाते हुए धर्म का ही आचरण करेंगे ।

सीता जी भी वन जाने के लिए श्री रामचन्द्र जी से प्रार्थना करते हुए कहती हैं :—

"फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।"

—(वा० रा० अयो० सर्ग २७ श्लो० १५)

अर्थ : 'नित्य फल-मूल खाती हुई मैं (आपके साथ) रहूँगी, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं ।"

श्रीराम जी ने निषादराज से कहा था :—

"कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं च माम् ।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ।।"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ५० श्लो० ४४)

अर्थ : "कुश-चीर-अजिन (मृगछाला) का धारण करने वाला तथा फल-मूल आदि भोजन करने वाला मुझे समझें । इस समय मैं वनवासी तपस्वियों के धर्म में दीक्षित हो रहा हूँ ।"

वन को चलते समय श्री लक्ष्मणजी ने अपनी उपयोगिता बनाते हुए कहा था —

"आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि फलानि च ।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहाराणि तपस्विनाम् ।"

—(अयोध्या काण्ड, सर्ग ३१, श्लो० २६)

अर्थ : मैं नित्य आपके लिए मूल-फल, तथा अन्य जो तपस्वियों के लिए श्रेष्ठ आहार के योग्य वन की वस्तुएँ हैं, वे सब लाया करूँगा ।"

"न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।"

—(वा० रा० सुन्दर काण्ड, सर्ग ३६, श्लो० ४१)

अर्थ : ("हनुमान् जी सीता जी से कहते हैं) राम न मांस खाते हैं और न मद्य पीते हैं ।"

अतः इन प्रमाणों से उत्तरकाण्ड के श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहे है । 'वाल्मीकि रामायण' से भी लेखक द्वारा मांसाहार सिद्ध करना व्यर्थ हो गया ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुस्मृति और मांसाहार :

पृष्ठ ५६, ५७, ५८, :—"मनु० १०।१०५, १०।१०६, १०।१०७, ५।५६, ५।३२, ५।३५, ५।३९-४०, ५।२६, ५।१८, ३।२६८, ३।२६९, ७०, ७१ में मांसाहार का वर्णन है।

समीक्षा : वर्तमान मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही लेखक अपने ग्रन्थ में परस्पर विरोधी बातें नहीं लिख सकता। अतः मनुस्मृति का सारा मांस-प्रकरण प्रक्षिप्त है। पौराणिक होते हुए भी व्याकरण-साहित्याचार्य, साहित्यरत्न—**पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री** अपनी "मनुस्मृतिः सविमर्श 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका सहिता पृष्ठ ३१-३२ (सन् १९५६ ई० द्वितीय संस्करण, चौखम्बा, वाराणसी) में १७५ श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हैं। मनुस्मृति के केवल एक श्लोक से ही सम्पूर्ण मांस प्रकरण प्रक्षिप्त हो जाता है—

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकः॥"

—(मनु० ५।५१)

उक्त पं० जी कृत टीका : "अनुमति देने वाला, शस्त्र से मरे हुए जीव के अंगो को टुकड़े-टुकड़े करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला; (जीव वध में) ये सभी घातक (हिंसक) होते हैं।

विमर्श : अनुमन्ता—जिसकी अनुमति के विना उस प्राणी का वध नहीं किया जा सकता, वह क्रयविक्रयी—गोविन्द राज ने इसका अर्थ—'खरीदकर बेचने वाला' किया है। किन्तु 'मारने से हन्ता, धन से खरीदने वाला, धन लेने से बेचने वाला और उसमें प्रवृत्ति करने से संस्कार करने वाला—(घातक होते हैं), इस यम वचन में, खरीदने वाले तथा बेचने वाले'—दोनों को पापभागी लिखा है। यह घातक (हिंसक) त्वदोष शास्त्रोक्त विधि से विरुद्ध हिंसा-विषयक है, शास्त्र के विधि-निषेधोभयपदक होते हैं तथा मांस-भक्षक के लिए अन्यत्र प्रायश्चित्त कहा गया है।"

"यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुरा ऽऽसवम्।
सद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः॥"

—(मनु० ११।९५)

अर्थ : "मद्य, मांस, सुरा और आसव ये चारों यक्ष, राक्षसों तथा पिशाचों के अन्न (भक्ष्य पदार्थ) हैं, अतएव देवताओं के हविष्य खाने वाले ब्राह्मणों को उनका भोजन (पान) नहीं करना चाहिए।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामकारान् विहिंसन्ति वहिर्वेद्यां पशून् नराः ।"

—(महाभारत, शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५ श्लो० ५)

पं० राम नारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' : धर्मात्मा मनु ने सम्पूर्ण कर्मों में अहिंसा का ही प्रतिपादन किया है । मनुष्य अपनी ही इच्छा से यज्ञ की बाह्य वेदी पर पशुओं का वलिदान करते हैं ।"[११६]

महाभारत से भी यह पुष्टि हो रही है कि मनुस्मृति में 'अहिंसा' की चर्चा है और यज्ञ में पशु-बलिदान भी धर्मशास्त्र के विरुद्ध है ।

अतः मनुस्मृति से मांसाहार सिद्ध करना वृथा प्रयास है ।

क्या 'महाभारत' में 'गोवध' की चर्चा है ?

पृष्ठ ५६ : "……शान्तिपर्व अ० १४१ में आता है कि विश्वामित्र चाण्डाल के घर से मरे हुए कुत्ते का मांस चुरा कर खा गया ।…"

समीक्षा : महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय १४१ में (आपद्धर्म पर्व में) विश्वामित्र और चाण्डाल से संवाद हुआ है । 'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति' मनु के इस कथन के अनुसार भूख से व्यग्र होकर चाण्डाल के गृह में कुत्ते का मांस चुराने गए थे । जब चाण्डाल के समझाने से ऋषि नहीं माने तो वह चुप हो गया । ऋषि कुत्ते का मांस चुराकर तो लाए पर भक्षण नहीं किया यह श्लोक ९४ से स्पष्ट हो जाता है ।

अंत में उन्होंने यज्ञ किया तो भारी वर्षा हुई और अन्न उत्पन्न हुए । श्लोक ९८ "विश्वामित्रोऽपि भगवांस्तपसा दग्धकिल्बिष । कालेन महता सिद्धिमवाप परमाद्भुताम् ।।" अर्थात्—भगवान् विश्वामित्र भी दीर्घकाल तक **निराहार व्रत** एवं तपस्या करके अपने सारे पाप दग्ध कर चुके थे । अतः उन्हें अत्यन्त अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई । श्लोक ९९ से स्पष्ट हो जाता है कि देवों की कृपा से **पवित्र भोजन** प्राप्त करके उसके द्वारा जीवन की रक्षा की ।"

अतः लेखक यह बतलावे कि महाभारत में यह कहाँ लिखा है कि विश्वामित्र जी ने कुत्ते का मांस भक्षण किया था । यह वृथा दोषारोपण मात्र है ।

पृष्ठ ५७—"महाभारत में भीमसेन के लिए मांस के टोकरे लाने का उल्लेख भी स्पष्ट करता है कि वे लोग भोजन में मांस को भी समाविष्ट करते थे (देखें० महाभा० शल्यपर्व अ० ३० श्लोक २३ और ३४) ।

समीक्षा—महाभारत शल्यपर्व के अन्तर्गत गदापर्व के अ० ३० में अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य का सरोवर पर जाकर दुर्योधन से युद्ध करने के लिए बातचीत

---

११६. "महाभारत (पंचम खण्ड) (शान्तिपर्व) (सचित्र, सरल हिन्दी अनुवाद सहित) (गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित) पृष्ठ ५१०५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना है। व्याघों से दुर्योधन का पता पाकर युधिष्ठिर का सेना सहित सरोवर पर जाने का वर्णन है। इसमें भीमसेन द्वारा मांस भक्षण की कहीं चर्चा नहीं है। लेखक को मेरी चुनौती है कि वह मांस भक्षण सम्बन्धी श्लोक प्रस्तुत करे।

वास्तव में दुर्योधन सरोवर में छिप गया था और पाण्डव उसे खोज रहे थे पर पता न चलता था। जिस समय दुर्योधन द्रोणकुमार से वार्तालाप कर रहा था उस समय "तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः। मांसभार परिश्रान्ताः पानीयार्थे यदृच्छया ॥२३॥=वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांस के भार से थके हुए बहुत से व्याध उस स्थान पर पानी पीने के लिए अकस्मात् आ पहुँचे।" (२३)

उन व्याधों ने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्त में होने वाली बातें सुन लीं। और उन्होंने आपस में विचार-विमर्श किया कि यदि हम दुर्योधन का पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। धन के लोभ से वे "एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः। मांसभारानुपादाय प्रययुः शिविरं प्रति (३४)—इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धन की अभिलाषा रखने वाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांस के बोझ उठाकर पाण्डव शिविर की ओर चल दिए (३४)।

भीमसेन के पास जाकर उन्होंने सरोवर के तट जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुनने में आया था, वह सब कह सुनाया (४१) "ततो वृकोदरो राजन् दत्वा तेषां धनं बहु। धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः (४२)=राजन्! तब शत्रुओं को संताप देने वाले भीम ने उन व्याधों को बहुत धन देकर धर्मराज से सारा समाचार कहा।"

न तो इस अध्याय में भीमसेन द्वारा उन मांसों के रखने की और न भक्षण की कहीं चर्चा है। लेखक को दिवास्वप्न हो गया कि पाण्डव मांस खाते हैं। व्याधों का काम है शिकार करना, मांस यत्र-तत्र ले जाना। वे मांसों के साथ जंगल से आ रहे थे और गुप्तचर बनकर धन के लालच से पाण्डवों के शिविर में गए (उस समय अपने शिकार मांस को कहाँ छोड़ देते अतः साथ लेते गए थे। संवाद सुनाकर, धन लेकर वापस चले गए। 'बिल्ली को स्वप्न में जैसे मांस के छिछड़े ही दिखाई देते हैं' उसी प्रकार लेखक मांस शब्द देखकर पाण्डवों पर मांस भक्षण करने का आरोप कर बैठा।

पृष्ठ ५७ : "महाभारत सभापर्व अ० २२ से पता चलता है कि पशुमांस के समान ही उन दिनों नरमांस भी बलि और यज्ञ के लिए प्रयुक्त होता था।…"

समीक्षा : महाभारत, सभापर्व अन्तर्गत जरासंघपर्व अध्याय २२ में जरासंध और श्रीकृष्ण का संवाद और जरासंघ की युद्ध के लिए तैयारी आदि की चर्चा है। जरासंघ आसुरी प्रकृति का राजा था अतः उसके कुविचार को जानकर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं —

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजा राज्ञः कथं साधून् हंस्यान्नृपतिसत्तम।
तद् राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥ ९ ॥

अर्थ : नृपश्रेष्ठ ! एक राजा दूसरे श्रेष्ठ राजाओं की हत्या कैसे कर सकता है ? तुम राजाओं को कैद करके उन्हें रुद्र देवता को भेंट चढ़ाना चाहते हो ?

अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथत्वया।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः॥ १० ॥

अर्थ : बृहद्रथकुमार ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह पाप हम सब लोगों पर लागू होगा; क्योंकि हम धर्म की रक्षा करने में समर्थ और धर्म का पालन करने वाले हैं।

अध्याय २४ श्लोक ७ से ११ तक से पता लगता है कि भीमसेन द्वारा जरासंध मारा गया। श्लोक १२ से पता लगता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने उन सभी बन्दी राजाओं को छुड़ा दिया।

अत: 'नरवलि' कहाँ हुई ? किस श्लोक से 'नरवलि' का स्वप्न लेखक को हुआ ?

पृष्ठ ५७ : रंतिदेव नामक महादानी और यज्ञकर्ता की रसोई में मांस भोजन वनता था (महाभारत, शान्तिपर्व अ० २९)। उसके यहाँ नित्य दो हजार गौएँ मारी जाती थीं (महाभारत, वनपर्व अ० २०७ श्लोक ९)। शान्तिपर्व अध्याय २९ श्लोक १२७ से पता चलता है कि एक दिन अतिथियों के लिए इसने २,१००० गौएँ मारीं। इतना ही नहीं, इसने गोमेध यज्ञ में इतनी गौएँ मारीं कि उनके रक्त, मांस और चरबी से एक नदी वह निकली जो 'चर्मण्वती' कहलाई। देखें महाभारत, शांतिपर्व अ० २९, श्लोक १२३, मेघदूत के ४५वें श्लोक की मल्लिनाथ की संस्कृत व्याख्या।······मांस से अधिक भक्ष्य भी कोई नहीं है (महाभारत, अनुशासन पर्व अ० ६, श्लोक ७ से १० तक)।······

समीक्षा : राजा रन्तिदेव द्वारा गौएँ मारने व उनके भोजनशाला में मांस भोजन के वर्णन की बात भ्रमपूर्ण है। महाभारत में ऐसी चर्चा नहीं है। सरिता के लेखक जैसा क्षुद्राशय व्यक्ति उन्हें नहीं समझ सकता । लेखक के दिए हुए प्रमाणों पर विचार।

क्या राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनता था ?

महाभारत शान्तिपर्व अ० २९ में कहीं भी राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनने का वर्णन नहीं है। यदि है तो लेखक को श्लोक संख्या देकर अर्थ करना उचित था पर कहीं से सुन सुनाकर लिख दिया है।

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति ससृष्टमणिकुण्डलाः।
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य भोज्यं यथा पुरा।"

—[महाभारत, शान्तिपर्वान्तर्गत राजधर्मानुशासन पर्व, अ० २९ श्लोक १२८]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ : वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किए रसोइये पुकार-पुकार कर कहते थे कि "आप लोग खूब दाल-भात खाइए। आज का भोजन पहले जैसा नहीं है' अर्थात् पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा है।

यहाँ केवल 'दाल-भात' के बनने की चर्चा है।

गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'महाभारत' वनपर्व अ० २०७ श्लोक ६ में कहीं भी दो सहस्र गौवों के वध की चर्चा नहीं है।

राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वैद्विज।
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा।
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा॥

यह प्रमाण राजा राजेन्द्रलाल मित्र की अंग्रेजी पुस्तक "Beef in ancient India" (प्राचीन भारत में गोमांस) नामक पुस्तक की भूमिका के पृष्ठ ३ पर अंकित है।

वास्तव में यह श्लोक 'चित्रशाला संस्करण, पूना के' वन पर्व अ० २०८ में और 'भण्डारकर इन्स्टिट्यूट' पूना के संस्करण के वन पर्व अ० १९९ में मिलता है।

सभी संस्करणों में यह श्लोक नहीं है। जिन-जिन संस्करणों में ये श्लोक हैं उनमें आगे की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम।

अर्थात्—हे द्विजश्रेष्ठ ! सदा मांस सहित भोजन देने वाले राजा रन्तिदेव की अनुपम कीर्ति हुई।

उपर्युक्त तीनों पंक्तियों का अर्थ 'वध्यते शब्द का 'मारी जाती थीं' लेकर यह माना जाता है कि राजा रन्तिदेव की रसोई में दो सहस्र पशु और दो सहस्र गायें प्रति दिन मारी जाती थीं।

'वध्येते' का शुद्ध अर्थ : संस्कृत व्याकरण में 'वध' धातु स्वतंत्र नहीं है जिसका अर्थ 'मारना' हो सके, बल्कि मारने के अर्थ में 'हन्' धातु का प्रयोग हुआ है। यह बात महाभाष्य (२-४, ४२-४३) के 'उद्योत्' तथा 'ण्वुल्तृचौ' (३, १, १३३) कृदन्त के 'शब्देन्दुशेखर' में स्पष्ट है। इस 'हन्' धातु के स्थान में 'वध' आदेश होता है। पाणिनि २।४।४२,४३ का सूत्र है—'हनीवधलिङि् लुङि् च।' 'इस सूत्र का अर्थ 'हन्' धातु को 'वध' आदेश होता है 'लिङ् और 'लुङ्' लकारों में। 'लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं—एक विधिलिङ् और दूसरा 'आशिषलिङ्'। दोनों प्रकार के 'लिङ्' में 'वध' आदेश नहीं होता, किन्तु केवल 'आशिषलिङ्' में ही होता है जिसका अर्थ 'आशीर्वाद देना' होता है क्योंकि 'वध' आदेश करने वाले सूत्र के पहले पाणिनि का सूत्र है—"आर्वधातुके (इत्यधिकृत्य)'—इसका अर्थ है कि आर्वधातुक में ही

---

*जुन १९६७ ई० में मनीषा ग्रन्थालय प्रा० लि०, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'हन्' को 'वध' आदेश होता है, सार्वधातुक' में नहीं। इन दो लकारों (अर्थात् आशीर्वाद अर्थ में और भूतकाल अर्थ में) के सिवा और कहीं भी 'हन्' धातु को 'वध' आदेश होता ही नहीं। 'वध्येते' प्रयोग इन दो लकारों का नहीं है। इन दो लकारों में तो 'अवधीत्' और 'वध्यात' बनता है, 'वध्येते' तीन काल में भी नहीं बन सकता, क्योंकि 'वध्येते' यह वर्तमान काल अर्थ वाले 'लट्' लकार का प्रयोग है। इस लकार में 'हन्' धातु को 'वध' आदेश नहीं होता। इसलिए उसके प्रयोग 'हन्यते हन्येते, इत्यादि बनते हैं, जैसा कि 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' (गीता २।२०) यह 'मारने' अर्थ में 'हन्' धातु का प्रयोग है। यदि वर्तमान काल में 'वध' आदेश होता तो 'न वध्यते वध्यमाने शरीरे' —ऐसा होना चाहिए था किन्तु यह सभी मानते हैं कि ऐसा नहीं है। इसलिए महाभारत के रन्तिदेव प्रकरण में आए हुए दोनों श्लोकों के 'वध्येते'—वे प्रयोग 'हिंसा'—अर्थ वाले 'हन्' धातु के प्रयोग नहीं माने जा सकते। स्वतंत्र 'वध' धातु 'हिंसा' अर्थ में संस्कृत व्याकरण में कोई नहीं हैं तब यह 'वध्येते' किस धातु का प्रयोग है। यह निश्चय होता है कि यह प्रयोग हिंसा अर्थ वाले 'हन्' धातु का नहीं है बल्कि बन्धन अर्थ वाले 'वध बन्धने' धातु का है। संस्कृत व्याकरण में 'ब' कार 'व' कार 'र' कार और 'ड' कार और 'ल' कार 'र' कार—इनका अभेद होता है अर्थात् 'व' के स्थान 'ब' और 'व' के स्थान 'ब' का प्रयोग, 'र' के स्थान 'ड' और 'ड' के स्थान 'र' का प्रयोग तथा 'ल' के स्थान 'र' और 'र' के स्थान 'ल' का प्रयोग क्षम्य माना गया है।

महाभारत वनपर्व में वहां धर्म व्याध द्वारा कौशिक ब्राह्मण को धर्म का उपदेश दि। हुए हिंसा और अहिंसा का विवेचन किया गया है। गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण, वनपर्व अ० २०७ श्लोक ७४ में "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश है। इस अध्याय में हिंसा की बुराई और अहिंसा की प्रशंसा की गई हैं। इस विवेचन में कोई भी ऐतिहासिक उदाहरण नहीं दिया गया है।

अतः यह श्लोक निश्चय ही प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

राजा रंतिदेव के यहाँ पशु हिंसा नहीं होती थी—

(क) अनुशासन पर्व के अध्याय ११५ में गीता प्रेस के संस्करण में श्लोक संख्या ६३ से ६७ तक में बहुत से राजाओं के नाम गिनाए हैं जिन्होंने कभी मांस नहीं खाया। उन्हीं में राजा रंतिदेव का भी नाम है।

यदि राजा रन्तिदेव के यह ब्राह्मणों को गोमांस या साधारण पशु का मांस खिलाया जाता होता तो यज्ञावशिष्ट प्रसाद (पशुमांस) राजा रन्तिदेव अवश्य खाते और ऐसा होने पर कभी भी मांस न भक्षण करने वालों की श्रेणी में राजा रन्तिदेव कानाम नहीं गिनाया जाता।

(ख) दो सहस्र गायों का प्रतिदिन वध हो तो एक वर्ष में ७, २०,००० गायें नष्ट हो जायेंगी। प्रतिवर्ष लगातार इतनी गायों का वध हो तो धीरे-धीरे गोवंश ही नष्ट हो जाएगा। अतः यह बात उचित नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ग) यदि 'समांसं ददतो ह्यन्न···' पाठ ही ठीक माना जाय तो भी आगे वर्णित राजा रन्तिदेव की विशेपता को देखते हुए 'मांस' शब्द का अर्थ 'पशु मांस' नहीं हो सकता। शतपथ ब्रा० ११-७-१-३,"एतदु ह वै परमन्नाद्यं यन्मांसन्" 'परमान्न' नाम दूध-चावल के मिश्रण से वनी शक्करयुक्त खीर का है (परमान्नं तु पायसम्) अमरकोष २-७-२४। अतः इसका अर्थ होगा—पायस सहित अन्न भोजन कराने से राजा रन्तिदेव की अतुल कीर्ति हुई, न कि पशु मांस भोजन करने से।

(घ) गीता प्रेस गोरखपुर के संस्करण महाभारत, द्रोणपर्व अ० ६७ श्लोक १४ में

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत्॥ १४
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशति। १४½

संस्कृति पुत्र रन्तिदेव के यहाँ जिस रात में अतिथियों का समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस सहस्र गौएँ छूकर(स्पर्श कर)दान दी जाती थीं।

(ङ) **"अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।**
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽलभेत् तु यः।"

—[महाभारत : शान्ति पर्वान्तिर्गत मोक्षधर्म पर्व, अ० २६२, श्लोक ४७]

अर्थ—श्रुति में गौओं को 'अघ्न्या' (अवध्य) कहा गया है, फिर कौन उन्हें मारने का विचार करेगा? जो पुरुष गाय और बैलों को मारता है वह महान पाप करता है।

उपर्युक्त प्रमाण 'चित्रशाला पूना' संस्करण अ० २६२ श्लोक ४७ और 'भण्डारकर इन्सिटट्यूट' पूना संस्करण, अ० २५४ श्लोक ४५ में है।

ऐसे दानी और मांसभक्षण से घृणा करने वाले महात्मा राजा रन्तिदेव के यहाँ दो सहस्र निर्दोष पशु या गायों का मांस अतिथियों के लिए पकाया जाना संभव व युक्तिसंगत है क्या? कदापि नहीं।

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसत् गृहे।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशति।"

—(महाभारत, शान्तिपर्वान्तिर्गत राजधर्मानुशासनपर्व अ० २७ श्लोक १२७)

पं० रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' कृत टीकाः—"संस्कृति के पुत्र राजा रन्तिदेव के घर में जिस रात को अतिथियों का समुदाय निवास करता था। उस समय उन्हें बीस हजार एक सौ गौएँ छूकर दी जाती थीं।"[११७]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी सम्पादक "वैदिक धर्म" अपनी 'महाभारत' की टीका में अर्थ करते हैं:—"महात्मा रन्तिदेव के गृह में जो एक रात्रि

११७. वही, पृष्ठ ४४७४.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतिथियों ने निवास किया था; उसमें इक्कीस सहस्र गौवों से उनका सत्कार किया गया था।"

यहाँ कोई वध की बात नहीं है।

'डुलभष् प्राप्तौ' वा दानार्थ स्पर्श कराई गईं। क्योंकि दान के संकल्प के समय उस वस्तु का हाथ से स्पर्श करना पड़ता है। अथवा गोदुग्ध दुहने के लिए गाय को स्पर्श किया जाता है। उस पर हाथ फेरा जाता है; यही गाय के 'आलम्भ' (स्पर्श) का रहस्य है।

'आलभ् के 'स्पर्श' अर्थ "स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भे (मनु. २।१७८); यजु० २०।४ मंत्र के उव्वटभाष्य में 'यजमानमालभते कोसि; गौतमधर्मसूत्र (१।२।२२) में हरदत्तजी ने—"आलम्भनं—स्पर्शनम्" पारस्कर गृ० सू० (२।२।१६) में उपनयन में माणविक-हृदयालम्भन, 'अथास्य हृदयमालभते' = हृदय देश को स्पर्श करना; गोभिल गृ० सू० (२।७।२३) में "अत ऊर्ध्वम् असमालम्भनम्पद शरात्रात्" में प्रसूता स्त्री का दश दिन तक स्पर्श का निषेध है।

गोभिल गृ० सू० (२।७।२३) पर पं० सत्यव्रतजी सामश्रमी का भास्य— "अत ऊर्ध्वम् नाभिकृन्तनात् परस्तात् आदशरात्रात्'दशरात्रिविशेषं यावत् असमालम्भनम् अस्पर्शनम् कुमारमातुरित्यशौचविधिः"

ठा० उदयनारायण सिंहकृत भाषार्थः—नाड़ी छेदन के पीछे दश दिन प्रसूति स्पर्श योग्या न होगी।

अतः रन्तिदेव के 'आलभ्यन्त शतं गावः" का भी दानार्थ वा सत्कारार्थ स्पर्श ही अर्थ अभिप्रेत है।

'चर्मण्वती' नदी का रहस्यः—

उपातिष्ठन्त पशवः स्वयं तं संशितव्रतम्।
ग्राम्यारण्या महात्मानं रन्तिदेवं यशस्विनम् ॥१२२॥
महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजे यतः।
ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी ॥१२२॥

—[महाभारत, शान्तिपर्व अ. २७)

पं० रामनारायणदत्त शास्त्रीः—कठोरव्रत का पालन करने वाले, यशस्वी महात्मा राजा रन्तिदेव के पास गाँवों और जंगलों के पशु अपने आप यज्ञ के लिए उपस्थित हो जाते थे ॥१२२॥ वहाँ भीगी चर्मराशि से जो जल बहता था, उससे एक विशाल नदी प्रकट हो गई। जो चर्मण्वती (चम्बल)के नाम से विख्यात हुई॥१२३॥

टिप्पणी—यह श्लोक गीता प्रेस, गोरखपुर, चित्रशाला पूना संस्करण तथा भण्डारकर संस्था पूना के महाभारत, शान्ति पर्व अ० २७ में हैं। श्लोक की क्रम-संख्या में थोड़ा अन्तर है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजा रन्तिदेव के यहाँ पशु अपने आप मरने के लिए नहीं आते थे, वरन् स्नेह प्रदान करने और स्नेह लेने के लिए आते थे। गौ आदि पशु यज्ञ के लिए दुग्ध देने को या अन्य सेवा करने को ही आते थे। इससे प्रतीत होता है कि राजा रन्तिदेव उन पशुओं को यज्ञ के समय दान में देते थे। दान में देने के पूर्व उनको जल से स्नान करवा कर, स्वच्छ बनाकर उनका श्रृंगार किया जाता होगा और उस स्नान कराने से उनके चर्म का धोना होता था। २१ सहस्र गौओं के चर्म को धोने से जो जल बहता था उससे नदी बनी जो चर्मण्वती (चम्बल) नाम से विख्यात हुई।

'सरिता' के लालबुझक्कड़ लेखक ने इस रहस्य को न समझ कर उनके रक्त, मांस, चरबी से नदी का वह निकलना माना है जो उसकी मूर्खता ही है। रक्त जम जाता है, नदी के समान नहीं बह सकता। इस बात को भी लेखक नहीं समझता है।

मोनियर विलियम्स के 'संस्कृत अंग्रेजी कोश' में 'चर्मण्वती' के दो अर्थ दिए हैं—एक तो उस नदी का नाम जो बुन्देलखंड के मध्य बहती हुई गंगा में जा मिलती है जिसको आजकल 'चम्बल' नदी कहते हैं; दूसरा अर्थ 'Musa Sapientum='यह वनस्पति शास्त्र (Botany) में सामान्य केले के वृक्ष का पारिभाषिक नाम है। Musa शब्द संस्कृत में 'मोच' शब्द का पर्यायवाची है।

यह भी संभव हो सकता है कि जिस प्रान्त में चर्मण्वती नदी बहा करती थी किसी समय में वहाँ 'Musa Sapientum' कदलीवन रहा हो। इसी से उसका नाम 'चर्मण्वती' पड़ गया हो और वहाँ पर राजा रन्तिदेव द्वारा दान दिए जाने वाली गायें चरा करती हों तथा गोदान में फैली हुई राजा रंतिदेव की कीर्ति में चर्मण्वती नदी का भी उल्लेख आया हो।

डा० सुधीर कुमार गुप्त एम० ए० कृत मेघदूत का शाब्दिक अनुवाद व टिप्पणी:—राजा रन्तिदेव की कीर्ति सम्बन्धी ४७वें श्लोक की टिप्पणी में गुप्त जी लिखते हैं:—"ताण्ड् महाब्राह्मण १७.१३.१. में 'गोसवः क्रतुः' का अर्थ—'अथैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः' किया है। 'रन्तिदेव' का अर्थ—'रन्तिः रमणं देवानां यस्मिन् सः'—जिसमें विद्वान् रुचि लेते हैं: अर्थात् विद्वानों को सुखदायक और उनसे आदृत पुरुष। 'रन्ति' पद यजुर्वेद २२-१७ में इसी अर्थ में आया है (देखिए शतपथ ब्राह्मण १३. १. ६. २)। इस प्रकार देवपूज्य महाराज रन्तिदेव की स्वराज्य रक्षा ही 'सुरभितनयालम्भ' यज्ञ है। इसकी कीर्ति की परिचायिका चर्मण्वती नदी है। उसीके किनारे इन महाराज ने अपनी दान-वीरता, विद्वत्प्रेम, वीर कर्म, प्रजापालन, आदि का परिचय दिया था। 'चर्मण्वती' पद 'चर्मान् + वत् + ई' से बनता है। चर्म का अर्थ है—'चरति गच्छति येन तत् चर्म'। देखिए ऊणादि कोष ४।११५, ऋषि दयानन्द की टीका, अजमेर १८८७ सं० वि। जिससे जाता है—कीर्ति को प्राप्त होता है वह चर्म है। अतः रन्तिदेव की कीर्ति का परिचय देने के कारण यह चर्मण्वती कहलाती है।

इसका इससे अन्य अर्थ भी हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३. ७. ७. ५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(प्राणा वै सुरभयः) में 'सुरभयः' का अर्थ 'प्राणाः' किया है। अतः—पुरुषितनयाः (वीरपुरुषा, योधाः इति यावत्) तेषाम् आलम्भः (प्राप्तिः, स्वीकार, ग्रहणम्) तस्मात् जाता . 'जो वीर पुरुषों की महती सेना रखता है' अथवा 'जो महान् योद्धाओं का विजेता है'। इस अर्थ में महाराज रन्तिदेव के अद्भुत विक्रम का परिचय मिलता है, जो सर्वथा असंभव नहीं।"

पृष्ठ ५८ "आपने महाभारत, अनुशासन पर्व अ. ११५ श्लोक ५६ व ६०; अ. ६ श्लोक. ७ से १० तक मांस भक्षण का विधान बतलाया है।'

समीक्षा—आपने जिस अनुशासन पर्व के अ० ११५ में मांस खाने का विधान लिखा है उसमें ७६ श्लोक हैं और सभी श्लोकों में मद्य और मांस के भक्षण में महान् दोष, उनके त्याग की महिमा एवं त्याग में परम लाभ का प्रतिपादन बतलाया गया है। अ० ६ श्लोक ७ से १० तक में भी मांस भक्षण का आदेश नहीं है।

आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते।

—(महाभारत, अनुशासन पर्वाणि दान धर्म पर्व, अध्याय ११५ श्लोक ४५)

यह श्लोक मनुस्मृति ५।५१ के आधार पर है।

पं० रामनारायण दत्त शास्त्रीः—"जो मनुष्य हत्या के लिए पशु लाता है, जो उसे मारने की अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है। ये सब के सब खाने वाले ही माने जाते हैं अर्थात् वे सब खाने वाले के समान ही पाप के भागी होते हैं।"

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥४॥

—(महाभारत, शान्तिपर्वाणि मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५)

"जो धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, नास्तिक हैं तथा जिन्हें आत्मा के विषय में सन्देह है एवं जिनकी कहीं प्रसिद्धि नहीं है। ऐसे लोगों ने ही हिंसा का समर्थन किया है।"

महाभारत के इस उक्त प्रमाण से 'सरिता' के लेखक श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' **मूर्ख, नास्तिक** ठहरते हैं क्योंकि इनको सभी ग्रन्थों में हिंसा ही दिखाई दे रहा है।

सुरामत्स्या मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम् ॥६॥

—(महाभारत, शान्तिपर्वाणि, मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५)

अर्थ—"सुरा, आसव, मधु, मांस और मछली तथा तिल और चावल की खिचड़ी—इन सब वस्तुओं को धूर्तों ने यज्ञ में प्रचलित कर दिया है। वेदों में इनके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपयोग का विधान नहीं है।

अत: इस प्रमाण से स्पष्ट हो गया कि वेदों में सुरा, आसव, मधु, मांस, मत्स्य का प्रयोग वेदों में नहीं है। लेखक यदि सिद्ध करता है तो महाभारत के अनुसार वह धूर्त है।

इस एक ही प्रमाण ने मांस सिद्ध करने पर पानी फेर दिया है।

लेखक ने आगे 'मार्कण्डेयपुराण', ब्रह्मवैवर्त पुराण, वाममार्ग, तुलसीकृत रामायण से मांस भक्षण सिद्ध करने का प्रयास किया है जो वेद विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हैं। जब वेदों में ही इसका विधान नहीं है तब पुराणों व रामायण से सिद्ध करना व्यर्थ है।

इस प्रकार 'सरिता' में जो वेदादि ग्रन्थों से नरमेध, गोमेध, मांस भक्षण आदि को सिद्ध करने का कुप्रयास किया गया है उन सभी प्रमाणों पर उहापोह से विचार किया गया है।

इत्यलम्।

सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए सर्वदा तैयार रहना चाहिए—

मुद्रक : भाटिया प्रेस गांधी नगर, दिल्ली-३१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द संस्थान का आकर्षक साहित्य

1. Light of Truth

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश—महर्षि दयानन्द के महान् ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत यह अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। छपाई, कागज, जिल्द सभी दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक यह ग्रन्थ लागत मात्र पर दिया जा रहा है। पृष्ठ ५७८। साइज डिमाई आठवाँ।

कपड़े की बढ़िया जिल्द १२)

2. TEACHINGS OF SWAMI DAYANANDA

—मूल्य १.००

महर्षि दयानन्द की विचार धारा और शिक्षाओं से सभी को परिचित कराने के लिए अनुपम पुस्तक।

3. TEN COMMANDMENTS OF THE ARYASAMAJ

Re. 1.00

आर्य समाज के १० नियमों की अभूतपूर्व व्याख्या : स्व० पं० चमूपतिजी की लेखनी से। स्वामी जी के तिरंगे चित्र सहित मूल्य १)

4. MESSAGE OF THE ARYA SAMAJ TO THE UNIVERSE

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालङ्कार लिखित—आर्य समाज का संदेश फैलाने हेतु प्रभावशाली पुस्तिका—जिसका ८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। —मूल्य ५० पैसे।

5. VEDIC-PRAYER

संध्या, प्रार्थना, मंत्र, हवन, स्वस्तिवाचन, शांतिप्रकरण, ईशोपनिषद् आदि सभी की पूर्ण व्याख्या हिन्दी अंग्रेजी में एक साथ—और चुने हुए भजन, भेंट के लिए अत्युत्तम मूल्य २) ५०

6. DAYANAND THE GREAT (तीसरा नया संस्करण)

पं० वेद मित्र ठाकुर लिखित प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

7. AN INTRODUCTION TO THE ARYA SAMAJ

(तृतीय संस्करण) आर्य समाज से सभी को परिचित करने के लिए प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

8. THE GREAT GAYTRI मूल्य २० पैसे। १५) सैंकड़ा

गायत्री मंत्र का यह सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से आकर्षक है। ७५) रिम के सर्वश्रेष्ठ कागज पर रंगीन मोहक छपायी

9. THE VEDIC FUNDAMENTALS RS. 2.50

वैदिक धर्म के सिद्धान्त समझने हेतु प्रभावपूर्ण मार्ग दर्शन

10. VEDIC LIFE

वैदिक जीवन पद्धति पर चुने मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)५०

11. What is yoga ? योग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन मूल्य—१५ पैसे

12. The man and His Religion

स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखित एक ऐसा ग्रन्थ जो अपूर्व है—मूल्य १)

13. Life of Swami Dayanand D. N. Vasudeva···मूल्य १)

14. Christianity and Vedas

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड लिखित मूल्य १.५०

15. Bible in the Balance चार्ल्स स्मिथ द्वारा लिखित मूल्य १५ पैसे

16. A challenge to the christian faith स्वामी श्रद्धानन्द ५ पैसे

17. Essence of vedic Religion मूल्य 15 पैसे

18. The Fundamentals of the Arya Samaj मूल्य 15 पैसे

वैदिक हिन्दी साहित्य

१. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण मूल्य ६० पैसे

केवल हिन्दी में प्रत्येक मंत्र के साथ उनका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, चुने हुए भजन। ८४ पृष्ठ। मूल्य ६० पैसे। ५० रु० सैंकड़ा।

२—उपनिषद्—वचनामृत। पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार—मूल्य ४०पैसे

उपनिषदों का सार पुस्तक में प्रभावशाली ढंग से अंकित हैं।

३—धर्मग्रन्थावलोकन—संसार के प्रमुख धर्म ग्रन्थों का प्रामाणिक परिचय अनुपम ग्रंथ-प्रिंसीपल रत्नचन्द शर्मा एम. ए. लिखित —**मूल्य १) ५०**

४—गीत मंजरी—नया तीसरा बड़ा संस्करण **मूल्य १)४०। १००)सैंकड़ा**

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आपको भुलाना चाहते हैं तो 'गीत-मंजरी" का सहारा लीजिए।

५—ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा लिखित अनमोल रचना —**मूल्य ८० पैसे**

६—मोक्ष का वैदिक मार्ग आचार्य वैद्यनाथ-योगिराज पथिक का अनुपम मार्गदर्शन —**मूल्य ५० पैसे**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

्या "वेद" आपके घर में है?

यदि नहीं

तो

आज ही ८०) भेजकर

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

चार जिल्दों में

अपने परिवार में लाकर

परम पिता परमात्मा का

आशीर्वाद प्राप्त कीजिए!

धर्म की पुकार सुनो!

अपने घर में वेद लाओ!

धरती को स्वर्ग बनाओ!

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग,
नई दिल्ली-५

श्रावण=संवत् २०३०
जुलायी १९७३

रजिस्टर्ड नं०
D—1631

वेद-प्रचार सप्ताह आ रहा है,
श्रावणी का पर्व आ रहा है।
भूलिए नहीं
१३ अगस्त १९७३ से पूर्व
आपने
वेद-भाष्य-प्रकाशन-यज्ञ
की सफलता के लिए
अधिक से अधिक आहुति
भेजनी है
कोई भी वेदानुयायी ऐसा न रहे
जिसकी आहुति १३ अगस्त तक
श्रद्धा से न पहुंचे
आपका सहयोग ही
वेद को घर-घर पहुँचा सकेगा

— राकेशरानी
व्यवस्थापक

दयानन्द संस्थान [पंजीकृत न्यास]
नई दिल्ली-५

सम्पादक श्रीमती पं० राकेश रानी के लिये सैनि प्रिण्टर्स दिल्ली-६ में मुद्रित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi